R. S.

मनुष्य बनो

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदंपूर्णात्पूर्ण मुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वर्ष ६ | वैसाख सम्वत् २०१५ अप्रेल १९५८ | सं० ७/६७

❀ प्रार्थना ❀

गुरु गहकर हाथ सम्भालो मुझे। भव जाल फंसा हूँ निकालो मुझे ॥
१—पांच शत्रु पीछे लगे, करें सदा उत्पात ।
तुम मेरी रक्षा करो, देकर नाम की दात ॥
समरथ गुरु उनसे बचालो मुझे। गुरु गहकर हाथ सम्भालो मुझे ॥
२—दीन अधीन मलीन चित, चंचल मूढ़ कुचाल ।
गुरु दाता दुख भंजना, काटो यह जंजाल ॥
हूँ मौत के मुँह में जिलाजो मुझे। गुरु गहकर हाथ सम्भालो मुझे ॥
३—एक तुम्हारी आस है, आस किसी की नाँह ।
शक्ति नहीं आसक्त हूँ, पकड़ो मेरी बाँह ॥
पद कमल की छांह में पालो मुझे, गुरु गहकर हाथ सम्भालो मुझे ॥
४—मेरे चित्त में नित बसो, रखकर अपने संग ।
दिया जिया में बाढ़ सदा, प्रेम प्रतीत उमंग ॥
भव भय के भंवर से उछालो मुझे, गुरु गहकर हाथ सम्भालो मुझे ॥
५—विनती कब तक मैं करूँ, आयू बीती जाय ।
राधास्वामी दीन हित, अब तो करो सहाय ॥
दुखदाई दशा से हटालो मुझे। गुरु गहकर हाथ सम्भालो मुझे ॥

चेतावनी

(ले० महर्षि जी महाराज)

ईश्वर ने देखा कि मनुष्य धार्मिक शिक्षा पाकर भी भ्रम में फँस गया। ज्ञानी तो भूल में पड़े ही थे, भक्तों की मण्डली इनसे भी अधिक भ्रम ग्रस्त थी, तब ईश्वर ने नर शरीर धारण किया और ऋषि भेष में मनुष्यों के नगर में आया। जिसने सुना उसके दर्शन के लिए आये और मत मतान्तर के विषय में प्रश्नोत्तर करने लगे। सबकी बातें लम्बी चौड़ी होती थीं। यह व्यक्ति प्रश्न करके सावधान चित्त होकर उत्तर को भी नहीं सुनते थे। न इनमें धीरज था न संतोष। ईश्वर ने अभी अपनी बात पूरी भी न करने पाई थी कि वह बीच से काटकर अपनी कहने लग जाते थे, ईश्वर ने सोचा 'यह प्रश्न के उत्तर तक तो सुनते नहीं फिर मानेंगे किस प्रकार'।

तब उसने उनसे पूछा, 'तुमने गुरू भी धारण किया है कि सबके सब निगुरे हो ?'

उत्तर में किसी ने कहा 'हमने गुरू किया है किसी ने कहा हमने अब तक गुरू नहीं धारण किया।'

जिन्होंने अपने आपको गुरुमुख बताया ईश्वर ने उनसे कहा, जब तुमने गुरू किया है तो फिर मुझसे प्रश्न क्यों करते हो, तुम्हारा गुरू किस रोग की औषधी है, उससे जाकर पूछो। गुरु मुख होकर दूसरे से प्रश्न करना गुरू का अपमान करना है। यह गुरू से विमुख होने का चिन्ह है। जाओ उससे प्रश्न का उत्तर लो।

यह बोले, 'हमारा गुरू कनफुक्का है।' वह कुछ समझाता बुझाता नहीं है। निर्चर भट्टाचार्य है। गुरू करने की प्रणाली चल गई उसने सीखा सिखाया मंत्र हमारे कान में फूँक दिया

और हम शिष्य बन गये। मंत्र तो हम जानते हैं, उसका सुमिरन भी करते हैं किन्तु मन संशय से भरा रहता है। यही कारण है कि जब कोई साधू सन्यासी आता है तो उससे पूछने गछने की सूझती है।'

ईश्वर ने कहा फिर तुमने अब तक गुरू नहीं किया यह झूँठी परम्परा है। इससे कार्य नहीं बनेगा।

झूँठे गुरु की पक्ष को, तजत न कीजे बार।
भेद न पावे शब्द का, भटके बारम्बार॥
सांचे गुरु की पक्ष में, मन को दे ठहराय।
चंचल से निश्चल हुआ, शब्द मांह लौ लाय॥
गुरू मिले संशय हटा, दुचिताई गई भाग।
चित का सहज निरोध कर, रहा चरन में लाग॥

उन सबने कहा—'आप समझदार ज्ञानी जान पड़ते हो, इसलिए आपके कथनानुसार अब आप ही को गुरू धारण करने की इच्छा है।'

ईश्वर ने उनको दीक्षा दी। इस पढ़े लिखे मनुष्यों की देखा देखी जो पढ़े लिखे नहीं थे वह भी शरण में आये। तब ईश्वर ने उनको चित्त के साधन की विधी बताई और सतसङ्ग कराकर उनके संशय और भ्रम को निवारण किया और वह इस संसार में सुख, आनन्द से अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

इनमें से एक मनुष्य शास्त्रों का भी ज्ञाता था वह एक दिन समय पाकर कहने लगा, 'भगवन्! आपकी कृपा से हमारा जीवन सुधर गया, चित्त की चंचलता गई, मन की दुविधा मिटी, हमारा जन्म सफल होगया और हम शरीर के बन्धन में रहते हुये भी मुक्त, निर्द्वन्द और उदासीन हैं किन्तु यदि आपकी आज्ञा हो तो हम और अज्ञानी जीवों के हितार्थ आप से कुछ प्रश्न करें।'

ईश्वर ने हँसकर कहा—'जब तुमने मुझको गुरू धारण कर लिया तो अब प्रश्न करने कहाँ जाओगे। जो कुछ जी में आवे पूछ लो। मैं सहज में तुमको समझा दूँगा।'

उसने पूछा (१) 'ईश्वर क्या है और जीव क्या है ?'

ईश्वर ने उत्तर दिया—'माया जिसके आधीन हो वह ईश्वर और जो माया के आधीन हो वह जीव है।'

मनुष्य फिर बोला—'ईश्वर क्या है और जीव क्या है ?'

ईश्वर ने फिर उत्तर दिया—'जिसमें ऐश्वर्य, बल, पराक्रम और स्वतन्त्रता हो वह ईश्वर है और जिसमें परतन्त्रता हो और जिसका बल, पराक्रम किसी अन्य के आधीन हो अथवा जो किसी का सहारा ढूँढ़ता, आश्रय रहता और आश्रय पर कार्य करता वह जीव है।' और सुनो—

'जिसके लिए जन्म मरण नहीं है, जिसे इनकी चिन्ता तक न हो वह ईश्वर और जिसे जीने की इच्छा हो और मृत्यु का भय लगा रहे वह जीव है।'

मनुष्य ने प्रश्न किया—(२) 'माया क्या है जिसने जीव को भ्रम में डाल रक्खा है ?'

ईश्वर ने उत्तर दिया—'माया जीव की अपनी शक्ती की सामिग्री और अपनी शक्ती का अज्ञान है।'

मनुष्य ने फिर प्रश्न किया—'भगवन् ! क्षमा कीजिये विस्तार में कहिये कि माया क्या है जिसने जीव को भ्रम में डाल रक्खा है।'

ईश्वर ने फिर उत्तर दिया—'माया मनुष्य की अपनी युक्ती का यन्त्र है, जिससे वह सबकी माप तोल करता है। यह माप तोल उसके अपने दुःख का कारण होता है। किसी को बड़ा समझ कर उसकी बड़ाई को डाह करने लगता है। किसी को छोटा समझकर उसकी छुटाई से घृणा करने लगता है। इससे भ्रम

उत्पन्न होकर उसी को दुखी करता है। और सुनो—

'माया जीव की अपनी बुद्धी है। दूसरी कोई वस्तु नहीं है। जीव को उसका यथार्थ ज्ञान नहीं है। इससे वह प्रपंची बन जाता है और भ्रम दूर हो जाता है तब सुखी हो जाता है।'

मनुष्य ने प्रश्न किया—(१) 'क्या माया जीव और ईश्वर दोनों में है ?'

ईश्वर ने उत्तर दिया—'हां, जीव और ईश्वर दोनों में माया है।'

मनुष्य ने चकित होकर फिर प्रश्न किया—'क्या ईश्वर जीव दोनों ही में माया है।'

ईश्वर बोला—'माया दोनों में है। ईश्वर की माया ईश्वरी समष्टि और जीव की माया जीवी (वेष्टी) है। बिना माया के न ईश्वर का कार्य होता है न जीव का।'

मनुष्य ने फिर कहा—क्या ईश्वर और जीव दोनों में माया है ?

ईश्वर ने उत्तर दिया—'हाँ, परन्तु ईश्वर की माया अङ्ग सङ्ग रहती हुई साधारण है दुखदाई नहीं है। जीव की माया अज्ञान के वश उसके लिए दुखदाई हो जाती है। बलवान में बल तो अवश्य ही रहता है। कोई बलवान ऐसा होता है कि वह अपने बल की ओर ध्यान नहीं देता बलवान ईश्वर है। और कोई बलवान ऐसा होता है जो अपने बल की ओर ध्यान देता रहता है। ध्यान दो प्रकार का होता है एक अहङ्कार (बल का घमण्ड) दूसरे दीनता (बल की न्यूनता) का दुख। अहंकार और दीनता दोनों ही अभिमान के रूप हैं जो जीव में रहते हैं और उसे दुखी करते हैं। जीव जब गुरु द्वारा भक्ती करने लगता है तो यह अभिमान का दोष जाता रहता है। तब उसे दुख सुख, जन्म मरण, बन्धन, मुक्ती किसी का भय नहीं रहता।

मनुष्य ने प्रश्न किया—(४) 'क्या ईश्वर और जीव दोनों में मन रहता है ?'

ईश्वर ने उत्तर दिया—'हां, मन दोनों में रहता है। मन नाम है मनन शक्ती। इसके बिना कार्य कैसे होगा।

मनुष्य ने फिर प्रश्न किया—'क्या ईश्वर और जीव दोनों में मन रहता है ?'

ईश्वर ने उत्तर दिया—'दोनों में मन न रहता तो जगत में सोचने का व्यवहार जो हो रहा है कैसे चलता।'

मनुष्य ने फिर प्रश्न किया—महाराज थोड़ा और समझाइये।

ईश्वर बोला—'तुम्हारे प्रश्न का मन्तव्य यह है कि दोनों के मन में भिन्नता क्या है ? ईश्वर समुद्र के समान है उसमें मन की तरंगें स्वाभाविक उठा करती हैं। वह लाख उठा करें ईश्वर को उनसे हानि नहीं पहुँचती क्योंकि वह अपने रूप में स्थित रहता है परन्तु जीव की यह दशा नहीं है छोटे होने और छोटाई की समझ के दोष के कारण उसके मन में जो तरंगें उठती हैं वह उनका अभिमानी होकर उन्हीं में लम्पट हो जाता है और रेशम के कीड़े के प्रकार अपने धागों के उलझन में आप फँस फँसाकर अत्यन्त दुख को प्राप्त होता है यदि गुरु द्वारा भक्ति करके वह सर्व भौमिक और व्यापक का इष्ट धारण करके उसका अभिमानी बन जाय तो इस अभिमान का संस्कार धीरे धीरे उसे कुछ दिनों पीछे कुछ का कुछ बना देगा तब उसको दोष से मुक्ती हो जायगी।

मनुष्य चुप हो गया, ईश्वर ने समझा इन जीवों को आवश्यक चेतावनी मिल गई और सतसंग कराकर जब वह जीवन मुक्त पदवी को प्राप्त हो गये ईश्वर अन्तर्ध्यान हो गया।

शब्द

नहीं मैं जानता हूँ, कौन हूँ क्यों कर यहाँ आया ?
पड़ा क्यों काल की फाँसी में क्यों आपा ने भरमाया ॥
इधर भटका उधर भरमा कोई यह भेद बतलाये ।
बहुत पूछा किसी ने मेरी यह गुत्थी न सुलझाया ॥
पढ़ा पोथी, गया तीरथ, किया जप तप, रहा वन में ।
न सन्यासी उदासी और बनवासी ने समझाया ॥
न निकला काम तब मन में उदासी आगई मेरे ।
चरन राधास्वामी के पकड़े गुरू ने तब ऐ बतलाया ॥
नहीं माया अलग तुझसे ये माया तेरी बुद्धि है ।
समय है काल, माया बस, समय से आप घबराया ॥
सुरत को साध घट में धँस किया कर शब्द का साधन ।
तो यह समझेगा तू चेतन है, चेतन चेतना माया ॥
सुलझ तब वह गई गुत्थी, समझ निज रूप की आई ।
सुखी हो राधास्वामी संगत में गुन सतगुरु गाया ॥

कर्म भोग अथवा मौज

(ले० परम दयाल फ़क़ीर साहब)

विवश होकर मौज घसीटती और कार्य कराती है । जीवन सन्तमत में व्यतीत हुआ । अन्तिम अवस्था आगई । अब क्या दशा है ।

चरन शरन गुरु देव की मिली भाग जगा मेरा ।
निर्भाग्य से भाग्यवान हुआ यह अनुभव है मेरा ॥
धन्य धन्य गुरु देव दिया नाम का दाना ।
नाम रहस्य को समझकर मिला ठौर ठिकाना ॥
सहस कमल दल क्या है ! क्या त्रिकुटी स्थाना ।

सुन्न महासुन्न के भेद मैं खूब ही जाना ॥
भँभर गुफा आत्म पद पाय खुद ही हर्षाना ।
सत अलख अगम के भाव को समझ तृप्ताना ॥
अब पूरन भाग्य है पूरन रूप समाना ।
होश में आकर हर समय नित्य गुरू गुन गाना ॥

मैं कहता हूँ । सत्यता का सन्देश देता हूँ कि यदि किसी को सत्य पूरण पुरुष का सतसंग मिल जाय और उसके सतसंग से रहस्य अथवा भेद समझ लिया जाय और उस पर आरूढ़ होजाय तो जो प्राणी अपने आपको भाग्यहीन, दुखी, अशान्त भ्रान्तमय समझे बैठा है वह भाग्यशाली हो सकता है । वह कैसे ?

भाग्य अंश को कहते हैं । टुकड़े को कहते हैं । अस्तित्व भाग्य है । मानवीय शरीर मन और आत्मा मिश्रित वस्तु से बने हुए हैं । पाँच कर्म इन्द्रियां । पांच ज्ञान इन्द्रियां । मन, चित, बुद्धि, अहंकार और आत्मा है । जिस शक्ति के आधार पर अथवा जिस शक्ति से हमारे अन्तर यह सब कुछ बनता है उसको क्या पता शास्त्र, परमतत्व कहते हों । सन्त मत वाले सर्वाधार कहते हैं । गुरू नानक ने अकाल पुरुष कहा हो । कोई कोई सन्त संभवतः उसको अनामी पद कहते हों । वह शक्ति प्रत्येक जीव जन्तु तथा रचना की आधार है । मैंने उसकी खोज की । अपने अनुभव के आधार पर कहता हूँ कि वह है । किन्तु यह वर्णन करना कि वह क्या है कठिन है । उसका अनुभव नाम की प्राप्ती करने से होता है । वह नाम ?

प्रारम्भिक अवस्था में:—कर्म इन्द्रियों की एकाग्रता का नाम है । कोई प्राणी जब तक संसारिक व्यवहार में एकाग्रता से काम नहीं करता दुविधा में रहता है अथवा मन लगाकर कार्य नहीं करता उसका भाग्य नहीं जागता है । मन लगाकर एकाग्रता से साँसारिक कार्य करने से भाग्य उदय होता है । इसी प्रकार

अन्य कार्य बिना एकाग्रता के नहीं होते। किन्तु यह एकाग्रता कर्म इन्द्रियों की एकाग्रता है और यही विराट पुरुष के खेल में भूलोक में सफलता और प्रसन्नता देती है। जो प्राणी अपने संसारिक व्यवहार को पूर्ण ध्यान देकर नहीं करता वह कभी भी प्रसन्नता सुख और आनन्द को जिसका सम्बन्ध कर्म इन्द्रियों से है नहीं प्राप्त कर सकता है। संसार में सफलता प्राप्त करने की यह एक मात्र विधि है और यही नाम का एक अंग है। और मैंने इसी को पाँच नामों में से एक नाम समझा है। और इसी को सहस दल कमल कहता हूँ। यही विराट पुरुष कहलाता है। यह मेरा अनुभव है।

जो प्राणी कर्म योग से बेसुध है वाह्य जगत में एकाग्र चित होकर कार्य करते समय एकाग्रता को प्राप्त नहीं कर सकता वह किसी दशा में भी अपने अंतर में त्रिकुटी स्थान पर नहीं पहुँच सकता है। लाख कोई बातें बनाये क्रियात्मक जीवन कोई और वस्तु है। सांसारिक व्यवहार करते समय जो कर्म इन्द्रियों को एकाग्र करके संसार को, शरीर को अथवा अन्य विचारों को नहीं भूल सकता है वह मेरी तुच्छ बुद्धि में अंतरी साधन नहीं कर सकता है। इसलिए ध्यान पूर्वक सांसारिक व्यवहार को करना प्रथम सीढ़ी है। और इस कर्म से प्रसन्नता और सफलता प्राप्त होगी और सबसे पहली बात व्यायाम अर्थात् शारीरिक स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए कुछ न कुछ व्यायाम आवश्यक है। इस दृष्टिकोण से मैं राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कार्य को उत्तम समझता हूँ। स्वयं सेवक का अर्थ है अपनी सेवा करना। वह प्रथम यही है कि अपनी कर्म इन्द्रियों को एकाग्र करो। यह एक रूप में व्यायाम है। दूसरे रूप में मन लगाकर सांसारिक व्यवहार को करो। तुम्हारा भाग्य अवश्य बढ़ेगा। अर्थात् तुमको प्रसन्नता, सुख और चैन मिलेगा।

नाम की द्वितीय अवस्था:—ज्ञान इन्द्रियों की एकाग्रता है। इसका तात्पर्य विचार, समझ और बुद्धि का बढ़ाना है। इसके लिए अपने अपने कार्य के अनुसार उस प्रकार के व्यक्तियों से, पुस्तकों से संबंध रक्खो जिससे तुम्हारी बुद्धि, विचार और समझ बढ़े। पांथिक जगत में उसका नाम सतसंग है।

'बिन सतसङ्ग विवेक न होई, राम कृपा बिन सुलभ न सोई।'

सच्ची समझ चाहे वह जीवन के किसी भी कार्य अथवा विषय के सम्बन्ध में हो वह तुमको प्रसन्नता देगी और अपने कार्य में सफलता देगी किन्तु जीवन का अनुभव बताता है कि यह कर्म इन्द्रियां और ज्ञान इन्द्रियां पश्चात् निर्बल हो जाती हैं फिर प्राणी दुखी और अशान्त हो जाता है। इसके लिए अपने अन्तर एकाग्रता के त्रिकुटी का स्थान है। अपना इष्ट बनाओ। उस इष्ट की मूर्ति अपने अन्तर प्रगट करना सीखो जिससे कि तुम्हारा जीवन अर्थात् मन अशान्ति, भ्रान्ति और भटकने से बच जाय।

मूर्ति जो बनाते हो उसमें तुमको विश्वास चाहिये। बिना श्रद्धा और विश्वास के कार्य न चलेगा। यह त्रिकुटी का स्थान है।

नाम की तृतीय अवस्था—मूर्ति के बन जाने के पश्चात् भी समय समय पर शारीरिक और मानसिक तथा कर्म और ज्ञान इन्द्रियों की निर्बलता के कारण अशान्ति उत्पन्न होती रहती है। यह मेरा निज अनुभव है। जो ऐसा साधन करते हैं वह श्रेष्ठतर जान सकते हैं।

इसलिए इस मूर्ति में प्रवेश करते करते तुम्हारा मन तथा कर्म इन्द्रियों व ज्ञान इन्द्रियों का बोध भान छूट जायगा फिर तुम्हारा आत्मा, मन, बुद्धि, चित, अहंकार के बोध भान को त्याग कर अपने रूप जो शब्द और प्रकाश का है वह हो जायगा

वहां न देह मन बुद्धि, चित और अहंकारा है वही दर असल आतम रूप तुम्हारा है जब प्राणी यहां पहुंच जाता है तो उसका भाग्य महान उत्तम हो जाता है। संसार का दुख सुख समाप्त हो जाता है। यह आत्म पद है। और वह अपने संकल्प से अपना और दूसरों का भला कर सकता है।

अब नाम की चतुर्थ अवस्था—इस आत्मपद में रहने वाला पुरुष शरीर और मन के आवरणों के कारण समय समय पर नीचे गिरता रहेगा। यद्यपि वह अत्यन्त उत्तम अवस्था है। इसलिए अपने आत्मपद को उसमें मिलाओ जिससे यह आत्मपद निकला है। वह है सत और अस्तित्व। वहाँ जाकर आत्मा अपने आत्मतत्व को भूल जाता है और वह पूर्ण हो जाता है। उसकी शक्ति अति बलवान होती है। उसका संकल्प जो स्वाभाविक निकलता है वह प्रकृति का संकल्प होना चाहिए। सम्भवतः इसी-लिए कहा गया हो।

संत वचन को कोई न टारे, ईश्वर परमेश्वर सब हारे।

यद्यपि इससे भी आगे और एक अवस्था है वह नाम की प्राप्ती की पंचम अवस्था कहलाती है। वहाँ जाकर मनुष्य का जीवन लाभ का नियत तथा अपरमित दशा में लय होकर अपने अस्तित्व को खो जाता है और वह स्वयं प्रकृति का पूर्ण रूपेण सर्व व्यापक सर्वाधार हो जाता है। यह अब मेरी अवस्था हो रही है।

भाग जगा गुरु शरन में आया, वहां से नाम रतन धन पाया।
अंजाम यह हुआ कि अपना आप मिटाया, जहां से प्रगटा उसमें समाया॥

परन्तु अभी मौज आधीन यह फ़क़ीरचन्द का शरीर, मन, और आत्मा स्थिति है। क्यों स्थिति है? संसार के कल्याण के निमित्त।

चेतन्यता में आकर पुकार करता रहता हूँ किन्तु यह पुकार अपने अन्तर ही रहती है। कर्म भोग वश प्रगट करता रहता हूँ। प्राणीमात्र का कल्याण हो।

यदि भारतवर्ष में परिवर्तन आ गया तो मेरा अनुभव ठीक है अन्यथा त्रुटि है। दीवानगी ही समझली जाय। जो मैंने समझा, अनुभव किया वर्णन कर दिया आगे मौज मालिक।

नाम की भिन्न २ दशायें अथवा अवस्थायें हैं। मैंने इनको भिन्न २ प्रकार की एकाग्रतायें समझी हैं और अन्तिम दशा एक ऐसी अवस्था है जहां मेरा अस्तित्व गुम होकर पूर्णता को प्राप्त कर लेता है। अंश और पूर्ण का अभ्यास समाप्त हो जाता है। इसलिए जीवन क्या है लव खुले और बन्द हुए। यह अनुभव तथा ज्ञान अन्तिम अवस्था है।

फ़क़ीरचन्द न गुरू है न किसी प्रकार की इच्छा तथा स्वार्थ रखता है। दातादयाल महर्षि जी के पवित्र पुनीत विभूति ने जिनके चरण कमलों में १९०५ में मौज आधीन गया। उनकी आज्ञानुसार और साथ ही हजूर सांवलेशाह व्यास वालों की अनुमति के अन्तरगत अपना निज अनुभव निर्भय होकर वर्णन करता रहता हूँ।

न आरज़ू है कोई मानै, न आरज़ू है कोई न मानै।
हमारे ज़ुम्मै काम था दिया दाता ने कर चले हो निष्कामै॥

मेरा कार्य सत्य है या असत्य है इसका उत्तरदायित्व मेरे ऊपर नहीं है। जिन पवित्र विभूतियों ने दिया वह उत्तरदायी हैं। मैंने अपने निज स्वार्थ के हेतु न कोई कार्य किया है न भविष्य में इच्छा है। किन्तु भविष्य का दावा नादानी है। मौज जो चाहै करे। हम सब उस प्रकृति के हाथों में कठपुतलियां हैं।

करे करावै आप ही आप मानुष के नाहिं कुछ भी हाथ।

यह मेरा अंतिम अनुभव है।

एक सज्जन ने उपरोक्त लेख को पढ़ा उसने अनेक प्रश्न किये वह उत्तर सहित अंकित किये जाते हैं जिससे कि यदि किसी को संशय अथवा शंकायें उठें तो उनका निवारण हो जाय।

प्रश्न—आपने सहसदल कमल जिसके संबंध में वाणियों में उल्लेख है उस ढंग से वर्णन नहीं किया। प्राणी कैसे विश्वास करेंगे।

उत्तर—मैंने क्रियात्मक रूप से अपना विचार प्रगट किया है। प्राणी सुमिरन, ध्यान, अजप्पा जाप करते हैं परन्तु उनका मन नाना प्रकार के संकल्प उठाता रहता है। घंटा घंटा इन्हीं संकल्पों में अपने अन्तर विचार करते रहते हैं यही तो सहसदल कमल है। यदि अधिक एकाग्रता हो जाय तो वही संकल्प विचार, भाव जो कि एक प्रकार का स्थूल पदार्थ है रंग, रूप और शब्दों में प्राणी सुनता है। वह उसी में प्रसन्नता और आनन्द लेते रहते हैं यही पचरंगी फुलवाड़ी है। वाह्य जगत में भी उसी का दृश्य है और अन्तर में भी वही। अन्तर और बाहर एक ही बात है। जो बाहर मन लगा सकता है वह अन्तर भी लगा सक्ता है। जिसको वाह्य-कार्य में मन लगाने की टेव नहीं है वह अन्तर में इस दृश्य से आगे न जा सकेगा। वाह्य कर्म में एकाग्रता से प्रसन्नता मिलती है। अन्तर में भी एकाग्रता से प्रसन्नता मिलती है। परन्तु यह जो कुछ भी अन्तर और बाहर दृश्य गोचर है वह है सबका सब प्रकृति। इसके अतिरिक्त कुछ नहीं।

प्रश्नः—ऐसा किसी ने नहीं कहा।

उत्तरः—कहा तो है परन्तु जीवित पूर्ण पुरुष के बचनों को समझना अत्यन्त कठिन है और समझने के लिए मन की एकाग्रता की अति आवश्यकता है। इसीलिये हजूर सांवलेशाह व्यास वाले सदैव वर्णन किया करते थे कि चन्द्र, सूर्य और तारागणों से आगे या दसवें द्वार के आगे सतगुरु विद्यमान है। इसके अति-

रिक्त सब पूर्ण पुरुषों ने विभिन्न शब्दों में श्रेणियों का वर्णन करते हुए सत को हक को लक्ष्य ठहराया है। और इस सत की जितनी निचली अवस्थायें हैं वह सब काल व माया देश के अन्तरगत मानी गई हैं।

प्रश्नः—तो इस सत की श्रेणी तक पहुँचने की क्या विधि है ?

उत्तरः—जो उपाय तथा विधि समझ में आई है वही बता सकता हूँ। वह सुन लो।

नं० १—संसार से उपराम, वैराग्य, किन्तु यह उपराम तथा वैराग्य किसी कारण वश न उत्पन्न हुआ हो। यद्यपि साधारणतः यह वैराग्य तथा उपराम या तो किसी प्रिय कुटम्बी की मृत्यु से, धन आदि की हानि से, संसार में दुख और आपत्तियों के कारण होता है किंतु मुख्य उपराम अथवा वैराग्य जो सत पद तक पहुँचा सकता है, वह है अनुभव—ज्ञान कि मनुष्य क्या है, कहाँ से आया है, कहाँ जाता है। मेरे प्रारम्भिक जीवन में मेरे वैराग्य और उपराम का कारण था किंतु अब वह दशा नहीं है।

प्रश्नः—तो क्या भक्ति मार्ग सत्य मार्ग नहीं है ?

उत्तरः—ईश्वर, परमेश्वर, ब्रह्म अथवा पारब्रह्म आदि की भक्ति करने वाला कभी भी इस सत पद तक नहीं पहुँच सकेगा। मेरी बात को सुनकर आश्चर्य होगा किन्तु ध्रुव सत्य। क्योंकि मैंने यह सब प्रकार की भक्तियाँ कर करके देखीं हैं। मनुष्य की सुरति बिना आश्रय के नहीं हो सकती है और जब तक किसी का सहारा है वह सतपद में प्रवेश नहीं कर सकता। यद्यपि वह स्वयं है सत ही। इसलिये इसका साधन सुरत को उस स्थान पर ले जाओ जहाँ से सुरत उत्पन्न होती है। फिर यदि पूर्ण पुरुष का सतसङ्ग है तो तब जाकर अनुभव होगा। इसलिये मेरी समझ में यथार्थ भक्ति या तो नाम की भक्ति है अर्थात् अनहद शब्द की

या वाह्य पूर्ण पुरुष का सतसंग है। यही रहस्य है। किन्तु है केवल उनके लिये ही जिनका भाग्य उदय हो गया हो। जब यह अवस्था आ जाती है तो भाग्य पूर्ण हो जाता है अर्थात् सुरत जिससे निकल कर अंश बनी थी। उसमें लय होकर अपने अस्तित्व को खो गई। जो पहले थी वही हो गई अर्थात् पूर्ण हो गई। फिर न संसार रहा न ईश्वर, न परमेश्वर, न ब्रह्म, न पारब्रह्म, न सत। कहने सुनने के लिये उस अवस्था को कोई ईश्वर कहै, ब्रह्म कहै, सत कहै उसको अधिकार है।

प्रश्नः—तो राधास्वामी नाम या धाम क्या हुआ ?

उत्तरः—इस वात का अनुभव कि मेरी सुरत उस चेतन के भंडार से निकली और उसी में लय हो जाती है इस अनुभव का नाम मेरी समझ में राधास्वामी नाम है। जीवन रहते हुये समस्त प्रकार के अहंकार समाप्त हो गये। इसको सार ज्ञान भी कह सकते हो।

न भक्ति का अहंकार और नहीं योग और ज्ञान का, तप, ध्यान की दुनियांदारी का कोई अहंकार रहा। पहले भी मनुष्य पूर्ण हुआ। मध्य का संग्राम समाप्त हुआ। संसार जैसा है वैसा है।

प्रश्नः—इस समय आप कैसे जीवन व्यतीत करते हैं ?

उत्तरः—जैसे मौज मालिक कराती है करता रहता हूँ। आँख बन्द होती रहती है उस समय उस सर्वाधार दातादयाल का प्रेम मन में रहता है। उस प्रेम में उसकी ओर कभी मन और कभी सुरत से खिंचता रहता हूं। और उसमें एक विशेष प्रकार का आनन्द लेता रहता हूँ। तनिक और ऊपर को उठा तो प्रकाश और शब्द में लय होकर प्रकाश और शब्द का आनन्द रहता है। कभी-कभी सब कुछ भूलकर एक ऐसी दशा उत्पन्न होती है कि सर्वाधार हो जाता हूँ तथा सर्व व्यापकता आजाती है।

सुनो मित्र ! व्यर्थ प्रश्नों से क्या लाभ । यह करनी का मार्ग है । करनी मेरी समझ में प्रेम है । मुझे इस प्रेम से जो मिला, जो समझा उसको वर्णन करता रहता हूं। जीवन क्या है ? लव खुले और बंद हुये । जीवन की धार किसी परम-तत्व तथा अवस्था से प्रगट हुई उसी में समा जायगी । मेरी समाती रहती है । धार का प्रगट होना और वापिस जाना राधा-स्वामी नाम समझ में आया है ।

प्रश्नः—कोई उदाहरणः—

उत्तरः—मेरा अपना अनुभव । इसके अतिरिक्त राधास्वामी दयाल की वाणी पोथी सार वचन को पढ़ो जहा लिखा हुआ है कि ऊपर से नीचे तक सब राधास्वामी ही है । यहाँ तक कि इन्द्री के धार पर वह धार कामी हो जाती है फिर उलट कर अपने रूप में समा जाती है । इस अनुभव के आधार पर पुकार कर चला हूँ कि ऐ प्राणी ! तू मनुष्य बन । धार्मिक, ईर्षा, द्वेश, घृणा, पक्ष-पात को त्याग । सम्पूर्ण जगत उसी का खेल है । जीवन मिला है जीवित रहो । प्रसन्नता से जीओ और प्रसन्नता से मरो ।

परमदयाल जी का पत्र

पूज्य कुबेरनाथ जी मुख्तार के नाम

पत्र मिला । आपकी इस आयु में चेचक (माता) का रोग हो जाने का खेद है । किन्तु कर्म भोग समझ कर मौन होता हूँ ।

जिस ठाकुर से नाहैं चारा । तिसको सदा सदा नमस्कारा ॥

आपने अपने पत्र में प्रश्न किया है कि मैं यह क्यों कहा या लिखा करता हूं कि भाई मेरा यह अनुभव है ज्ञात नहीं ग़लत है या ठीक । आपने लिखा कि ऐसा किसी ने नहीं कहा । मेरी

समझ में जो आया वह कहा जिससे कि भविष्य में आने वाला युग अपने जीवन के अनुभव पर स्वयं बिचार करेगा कि मैंने जो कुछ लिखा या कहा है वह ठीक है या नहीं।

सुनो ! मेरा यह कर्म किसी निज स्वार्थ, अपने मान, डेरा धाम, अथवा धन, सम्पत्ति के लिये नहीं है। नहीं मैं संसार को अपना शिष्य बनाना चाहता हूँ।

मैं ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ। विभिन्न प्रकार के संस्कार अनेक ऋषियों के मस्तिष्क आदि पर पड़े। बाल अवस्था से उस परमतत्व मालिक, ईश्वर अथवा ब्रह्म जो इस संसार का कर्त्ता या आधार है के मिलने की धुन हुई। और उसी लगन और तड़प में मौज मुझे सन् १६०५ में दातादयाल जी के चरण कमलों में ले गई। आपने संतमत (राधास्वामी मत) की शिक्षा दी। उनके बचन और संकेत जो मेरे नाम थे आपने पढ़े होंगे। और उस लक्ष्य तक पहुँचने या उस मालिक के मिलने की तड़प ने जप, तप, संयम, नियम, सुरत शब्द योग की कमाई, सचाई, आदि अनेक नियमों पर सत्यता से चलाया। मन में विभिन्न विचारों के अन्तर्गत साहस था कि जो अनुभव होगा वह वर्णन कर जाऊँगा। दातादयाल ने क्या पता यह आदेश निबल अबल और अज्ञानी जीवों की सहायता करना और जगत कल्याण के लिए कार्य करना इसे मेरे संकल्प की पूर्ती के लिए दिया हो अथवा इससे मेरे अनुभव को बढ़ाना स्वीकार हो। क्योंकि मुझे स्मरण है कि दाता ने संकेत किया था कि फ़क़ीर इस कार्य के करने से तेरा कल्याण होगा। और जिस मन्तव्य के लिये मौज ने तुझ को मेरे साथ लगाया है वह पूर्ण हो जावेगा।

मैंने कार्य किया। मेरा कार्य जैसा है वैसा है और जिज्ञासुओं और बुद्धिमान जगत को व्यक्त है। मैं इस कार्य को करने से घबराता था किंतु हजूर साँवलेशाह व्यास वालों ने साहस

दिलाया और मैं निर्भय हो गया। स्थितियां और परिस्थितियाँ मौज ने मेरे अनुकूल कर दीं। एक निर्धन, अकेले निःसहाय और कम विद्या वाले प्राणी को कार्य करने का अवसर दिया।

मेरे अनुभव ने जहाँ मैं इस समय तक पहुँचा हूँ सिद्ध किया है कि जीवन के मुख्य दो अंग हैं अथवा जीवन की दो मुख्य आवश्यकता हैं। एक आनंद दूसरी शांती। सबसे प्रथम प्रत्येक प्राणी आनंद, प्रसन्नता, निश्चिन्तता चाहता है। मेरे अनुभव ने सिद्ध किया है कि आनंद तीन प्रकार के हैं।

प्रथम—शारीरिक आनंद। इसमें काम, देखना, सुनना बोलना स्वास्थ्य आदि सब आ जाते हैं किंतु यह स्थाई नहीं है।

द्वितीय—मानसिक आनंद। बुद्धि, विवेक, विचार, समझ ज्ञान, भक्ति, योग, समाधि आनंद दायक होते हैं किंतु अनुभव बताता है कि समय आता है जब यह अवस्थायें प्रकृति और वाह्य प्रभावों के अंतर्गत बदल जाती हैं।

तृतीय—आत्मिक आनन्द! आत्मा मेरी समझ में प्रकाश और शब्द रूप हो जाता है। क्योंकि मन और शरीर उत्पत्ति स्थिति आदि इस शब्द और प्रकाश से होती है। इस अवस्था में न मन ही रहता है और न शरीर का ही बोध भान रहता है। किन्तु मेरा निज अनुभव यह है कि कोई पुरुष सदैव इस अवस्था में नहीं रह सकता है।

इसलिए मैंने इस शब्द और प्रकाश में प्रवेश होने का प्रयत्न किया तो मैं अपनी शारीरिक और मानसिक अवस्था को खोकर शब्द और प्रकाश दोनों को खोगया और एक ऐसी अवस्था प्रतीत हुई कि जहाँ का वर्णन करना असम्भव है। कहने को कह सकता हूँ कि मेरा आपा सर्व व्यापक हो गया अथवा हालते बे हालती हो गई या होती रहती है।

बाद मुझे यह निश्चय होगया कि फ़क़ीरचन्द चैतन्य

स्वरूप का एक बुंद है। जो उस व्यक्तित्व अथवा हालतेबेहालती से क्षोभ के अंतर्गत उत्पन्न हुआ और उसी में समा जावेगा। इस अनुभव ने शान्ति दिलाई। अब सतचित आनन्द जो शारीरिक मानसिक और आत्मिक खेल थे समाप्त हुये शरीर, मन और आत्मा का बोध भान अब भी है खेल होते हैं किन्तु एक प्रकार की शांति है। वह कुरेद जो अन्तर में थी समाप्त हो गई।

दौड़त दौड़त दौड़िया जहाँ लग मन की दौड़।
दौड़ थका मन थिर भया वस्तु ठौर की ठौर॥
शान्ती का सागर मेरी ज्ञात है मैं शांत रूप हूं भाई।
अभी देह मन रूह मौजूद है इसलिए लिख रहा हूँ भाई॥
न मस्ती रही अब न आनन्द रहा।
न योग है न सुमिरन और न ध्याना॥
गो मन के रहते लाज़मी है मगर।
ब नहीं है उनका मुझे अब अभिमाना॥
जो कोई मेरा दर्शन पावे शान्त संस्कार ले जावे।
जामिन लेकर शांती का अपना जीवन शांत बनावे।

अब मुझे योग, ज्ञान, प्रेम, भक्ति, कर्म, उपासना अथवा अन्य बातें एक प्रकार की दशा प्रतीत होती है और यह त्रिगुणात्मक जगत अथवा काल और माया का खेल है किन्तु जिस प्रकार कामी पुरुष काम के भोगने के पश्चात् एक प्रकार की शांति प्रतीत करता है इसी प्रकार जब तक प्राणी प्रेम, भक्ति, योग, ज्ञान और कर्म आदि के विषय को भोग न लेगा, उसको शांति की अवस्था आ नहीं सकती है। हाँ! यदि कोई शान्त पुरुष मिल जाय तो यह श्रेणियां शीघ्र समाप्त हो जाती हैं। इसीलिए बार बार संतों के मार्ग में आदेश है पूरे सतगुरु को ढूँढ़ो। गुरु खोजोरी जग में दुर्लभ रतन यही।

फिर उसकी आज्ञा का पालन करो। आज्ञाकारी बनो।

आज्ञाकारी बनो। वह इन श्रेणियों से अपनी युक्ति, उपाय, हित और मत से शीघ्र पार कर देगा। और प्राणी को शान्ति अर्थात् पूर्ण अनुभव मिल जायगा। चूँकि विभिन्न प्रकार के विचार, संस्कार मस्तिष्क पर पड़े हुए होते हैं उनका स्वच्छ करना कठिन है। इसलिए मौखिक सतसंग की अति आवश्यकता होती है जिससे भ्रम, संशय समाप्त हो जायें और साथ ही आन्तरिक साधन भी हो जिससे वाह्य वचनों की पुष्टी हो जाय।

मैंने जगत कल्याण के हित से इस उच्च शिक्षा के साथ मनुष्य बनो की पुकार उठाई है जिससे कि जन साधारण शारीरिक मानसिक और आत्मिक आनन्द जीवन में अधिक उठा सकें। यह मनुष्य बनो जन साधारण के लिए है और शान्ति का मार्ग मुख्य मुख्य प्राणियों के लिए है। यदि सच पूछो तो शान्ति के पश्चात् भी मनुष्यता ही रहती है। जिसको अपनाना अनिवार्य है।

अपना कर्मभोग समाप्त हो रहा है किसी दिन चल बसेंगे। आगे क्या होगा? अनुभव है किन्तु दावा किसी बात का नहीं है। सतगुरु दाता तुम्हारा कल्याण करें।

(मनोनियम से)

स्मरण शक्ति किस प्रकार दृढ़ हो

[ले०—महर्षि जी महाराज]

सोचना और विचार करना आवश्यक विषय है। परन्तु यदि हमारी स्मरण शक्ति अच्छी नहीं है और हम किसी बात को स्मरण नहीं रख सकते तो किसी प्रकार के भावों का होना न होना एक जैसा है। और सहस्रों भूली हुई बातों से दो चार का स्मरण रखना उत्तम है। स्मरण शक्ति से तात्पर्य हमारा उस शक्ति से है

जिसकी सहायता से हम मानसिक चित्रों को जिनका दर्शन हमको अनेक इन्द्रियों द्वारा हुआ है हृदय में स्थिर रख सकें। प्रत्येक वस्तु की एक अवधि तक स्मरण रखना इस बात पर निर्भर है कि हमारे हृदय व मस्तिष्क पर उसका प्रबल प्रभाव पड़ा है।

जिस समय कोई अचानक घटना अधिक (प्रबलता) के साथ आ जाती है और वह दूसरे विचारों को हटाकर अपना अधिकार हृदय पर जमा लेती है तो उसके स्मरण को भुलाना अत्यन्त कठिन हो जाता है। जिन घटनाओं में हमारा ध्यान नहीं होता उनको हम तुरन्त भूल जाते हैं। वह हमारे जीवन के अंग संग नहीं बनती। किसी भाव का मन में स्मरण रखना उसकी दृढ़ता पर निर्भर है।

जितने विचार हृदय में बैठ जाते हैं वह हमारे जीवन के अंश बन जाते हैं क्योंकि वह हममें स्थित होकर हमारे पथ-प्रदर्शक बनते रहते हैं। यदि किसी विचार का हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ गया है तो हमारे आगामी जीवन के ढालने में वह बड़ा सहायकारी होगा। यदि भाव दुर्बल है तो शीघ्र मिट जायगा। और उसका कुछ भी प्रभाव हममें शेष न रहेगा।

किसी मनुष्य की स्मरण शक्ति की विशेषता उस समय तक नहीं ज्ञात होती जब तक उसकी परीक्षा का अवसर नहीं आता। बहुत से मनुष्यों के जीवनों में भी कभी ऐसे विचार आये हैं कि यदि उनको याद कर लिया जाता और उचित समय में उनसे काम लिया जाता तो उनको धनवान और प्रतिष्ठित पुरुष बना देते। प्रायः प्रत्येक मनुष्य को ऐसे विचारों का स्मरण होगा जो अपनी अस्थि के विचार से बड़े मूल्यवान थे। एक भाव ने हृदय में उत्पन्न होते ही मन को उत्साह और आनन्द से भर दिया परन्तु निर्बल स्मरण शक्ति से काम पड़ा और जब उससे काम लेने का समय आया तो उसके हृदय पर कुछ लेशमात्र न रहा।

प्रत्येक विचार जिसकी मस्तिष्क के कार्यालय में रजिस्ट्री होती है शरीर के भागों में अपनी स्थिति के विचार से परिवर्तन उत्पन्न कर देता है। विचार जितना ही गम्भीर होगा और जितनी देर तक वह स्थिति रहेगा उतना ही अधिक प्रबल परिवर्तन होगा। इसलिए जो भाव हमको हानि या लाभ पहुँचाते हैं उन्हीं को हम स्मरण रखते हैं। विशेष मनुष्यों को विशेष विषय की बातें अच्छे प्रकार स्मरण रहती हैं परन्तु दूसरे विषय की बातें स्मरण नहीं रहतीं। जो दृश्य, जो घटनायें तथा जो बातें स्मरण नहीं रहतीं वह साधारणतः इस प्रकार की होती हैं जो स्मरण रखने वाले के स्वभाव के अनुकूल नहीं होतीं। और यही कारण है कि उसके हृदय में उनका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता।

जीवन की घटनाओं के विषय से मनुष्य की जैसी कुछ अवस्था बन जाती है उसी के अनुसार उसकी स्मरण शक्ति दुर्बल अथवा दृढ़ होती है। यदि वह उदासीन है और अपने चारों ओर की घटनाओं की ओर विचार की दृष्टि नहीं डालता तो यह सब उसके मस्तिष्क में केवल दुर्बल भाव उत्पन्न करेंगे और उसके जीवन पर उनका कोई प्रभाव न पड़ेगा।

जो मनुष्य विषयी, सखमी और निकम्मे होते हैं उनकी स्मरण शक्ति अच्छी नहीं होती। जो मनुष्य पठन पाठन के प्रेमी हैं, विज्ञान या फ़िलसफा के अनुरागी हैं उनकी स्मरण शक्ति दृढ़ होती है। वह सम्पूर्ण घटनाओं की ओर न केवल ध्यान देते हैं वरन् उन्हें भली भांति स्मरण रखते हैं। और प्रत्येक घटना को ध्यान देने योग्य समझते हैं। जो सुनते हैं, देखते हैं, कहते हैं, करते हैं उनको सब कुछ स्मरण रहता है। जिनकी स्मरण शक्ति अधिक दुर्बल है उनको जीवन का केवल आंशिक सुख प्राप्त होता है। वह तरंग में बह जाते हैं और उन सौंदर्यों को नहीं देखते जो गहराई में छुपे रहते हैं।

यह सौभाग्य का विषय है कि स्मरण शक्ति की उन्नति की जा सकती है। जिस व्यक्ति को बलवान बनाना हो, उसको निरंतर कार्य में लाओ क्योंकि अभ्यास से शक्ति आती है। उत्साह और आवेश जब उस शक्ति के साथ मिलेंगे तो अद्भुत फल उत्पन्न करेंगे। एक विचार या एक घटना को मन में रख छोड़ना सहस्रों दुर्बल घटनाओं के रखने से सहस्रों गुना अच्छा है। स्मरण शक्ति को बढ़ाने के लिये आवश्यक है कि एक समय केवल एक विषय की ओर ध्यान दिया जाय। और सम्पूर्ण विचार एकाग्र होकर उसकी ओर आकृष्ट हो। उसके अतिरिक्त और किसी ओर वृत्ति न जाने पावे। अन्य घटनाओं के लिए हृदय का द्वार बन्द रहे। इस टेव के उत्पन्न करने के लिए आवश्यक है कि जब अन्य व्यक्ति बात चीत कर रहे हों तो उनकी बात ध्यान पूर्वक सुनी जाय। और जब किसी दृश्य का देखना स्वीकार हो तो उसको ध्यान पूर्वक देखा जाय। इसके पश्चात् अपने नेत्रों को बन्द करलो। भीतर की ओर देखो और जो त्रुटि हो उसको दूर करने की चेष्टा करो। बारम्बार इस प्रकार करने से मस्तिष्क में उनका ध्यान स्थान प्राप्त कर लेगा और वह चिर स्थाई हो जायेंगे। जिस समय यह परिणाम प्राप्त होगा उसके जीवन में भीतर ही भीतर परिवर्तन आजायगा और यह विचार उसके अङ्ग सङ्ग बन जांयगे और फिर उससे पृथक न होंगे।

बड़े २ विचार शील पुरुष किस प्रकार अपने मस्तिष्क की उन्नति कर लेते हैं, कि एक बात भी नहीं भूलती। उनको इतने विचार और अध्ययन का अवसर कहां मिलता है। वह ऐसे स्थान पर चले जाते हैं जहां अन्य व्यक्ति नहीं होते और वहां अपने भावों में मग्न रहते हैं। विचार ही उनके साथी होते हैं। यदि वह इस प्रकार अपने मस्तिष्क को उन्नत कर लेते हैं तो उनके

दृष्टान्त से हमको भी शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये। प्रत्येक मनुष्य जो विचार करता रहता है वह उसी प्रकार बना हुआ होता है। क्योंकि यह विचार उसके जीवन के आवश्यक भाग हैं। और मनुष्य स्वयम् शनैः शनैः विचार स्वरूप बन जाता है। जो मनुष्य निम्नलिखित साधन का अभ्यास करेंगे और उसके अनुसार चलेंगे वह थोड़े ही अवकाश में अपनी स्मरण शक्ति का विकास होता हुआ अनुभव करेंगे। और यदि वह दृढ़ता और धैर्य से किंचित मात्र भी काम लेंगे तो उनकी स्मरण शक्ति उन्नति कर जायगी।

प्रत्येक मनुष्य को निश्चित कर लेना चाहिए कि वह एक या आधा घंटा इस साधन अथवा अभ्यास में प्रतिदिन व्यय करेगा, और अभ्यास प्रतिदिन नियत समय पर हो, सन्ध्या का समय सबसे उत्तम है। गृह की जिस कोठरी में अभ्यास करो अन्य कोई व्यक्ति न हो उस समय अपने विचारों को इस प्रकार आरम्भ करो कि प्रातः से लेकर इस समय तक समस्त दिवस में क्या २ कार्य किया है और जो २ कार्य किये हों उनका एक दूसरे के पश्चात् सबका चिन्तवन करते जाओ। इसमें शीघ्रता न की जाय वरन् धैर्य के साथ प्रत्येक घटना को सम्मुख लाते जाओ इस प्रकार साधन करने से स्मरण शक्ति में अधिक उन्नति होगी कुछ दिवस के अभ्यास के पश्चात् प्राणी को प्रति-दिवस की सम्पूर्ण घटनाओं के स्मरण करने में एक विशेष प्रकार की मनोरंजनता प्रतीत होने लगेगी और शनैः शनैः वह उनको सुगमता से अपने मन में स्थिर कर सकेगा। यहां तक कि छोटी छोटी बातें भी उसकी दृष्टि से गुप्त न रह सकेंगी! दृढ़ता उसके विचारों को तीव्र बना देगी क्योंकि गत दिवस की घटनायें उसे स्मरण होंगी इस प्रकार विचार शक्ति को भी सहायता मिलेगी और उसका मस्तिष्क नाना प्रकार की शक्तियों का भंडार हो

जायगा। और अभ्यास अत्यन्त सुहावना प्रतीत होगा।

मनुष्य को आप नहीं वरन् उसकी बचत उसको धनवान बनाती है। इसी प्रकार केवल देखने से ही नहीं वरन् स्मरण रखने से मनुष्य बुद्धिवान हो जाता है।

दूसरा अभ्यास जो मस्तिष्क को उन्नति देगा वह निम्न लिखित है:—

जिस पुरुष को उत्तम समझते हो ले लो और यह निश्चय करलो कि इसमें जितनी घटनायें हैं वह सम्पूर्ण पूर्णतया मुझको स्मरण रहेंगी और तुम सुगमता पूर्वक उनका वर्णन कर सकोगे। एक २ शब्द को बिचार पूर्वक अध्ययन करो और प्रत्येक शब्द पर बिचार करते जाओ और उसके कार्य स्मरण रक्खो। एक कोष भी समीप रक्खो जिससे कठिन शब्दों के अर्थों का भी पता लगता जाय क्योंकि जब तक किसी शब्द के अर्थ हमको ज्ञात न होंगे तब तक उसका प्रभाव भी हृदय पर न पड़ सकेगा।

प्रतिदिन नवीन वृतान्त सावधानी के साथ स्मरण करो। प्रतिदिन गत दिवस के स्मरण दिए हुए को फिर से पाठ किया करो। जिससे यह ज्ञात हो जाय कि वह विस्मरण तो नहीं हो गया।

तीसरा अभ्यास यह है कि एकान्त में बैठकर मनोनियम के अनुसार एकाग्रता की अवस्था प्राप्त की जाय। प्रथम अपने बिचार को किसी विशेष व्यक्ति अथवा विषय पर स्थिर करो। दस मिनट तक यह अवस्था अवश्य रहे। फिर इच्छा शक्ति को सर्वथा अपनी इच्छा पर छोड़ दो। और बिचारों की धारों को हृदयांकित करो। जो बिचार आयें उनको एक पत्र पर नोट कर लो। क्योंकि यदि ऐसा ज्ञान किया जायगा तो दूसरे विचार के आने पर वह सब विस्मरण हो जायेंगे। पन्द्रह या बीस मिनट तक भावों के संचय करने के पश्चात् फिर उनको छोड़ दो और

जो कुछ दृष्टि गोचर हुआ है अथवा अनुभव किया है उसको एक पत्र पर लिख लो। ऐसा करने से तुम्हारी स्मरण शक्ति की वृद्धि होगी। लिखने के पश्चात् उनको अध्ययन करो और द्वितीय दिवस उसी घन्टा तक के लिये फिर उनको छोड़ दो। जब साधन का समय आये तब उसको स्मरण करो और बिचार करो कि कितनी घटनायें तुमको स्मरण हैं। जब निश्चय हो जाय कि वह मस्तिष्क में प्रवेश कर गये तब फिर नवीन भावों के लिए उद्यत हो। यह साधन प्रतिदिन अथवा दूसरे दिन किया जाय। यदि उच्च बिचार प्रति दिवस चुने जांयगे तो वह जीवन को लगनशील बना देंगे क्योंकि मनुष्य जो कुछ विचार करता है वह वही बन जाता है। जो भाव प्रति दिवस अंकित होते रहेंगे वह तुम्हारे जीवन के हेतु भविष्य में बड़े हितकर प्रमाणित होंगे। अभ्यास करना और स्मरण करना भूल जाने की तुलनायें अधिक सुगम हैं। इसलिये मेरा कहना मानो। ऐसे विचार कभी न स्मरण करो जिनको भुलाने के लिए तुमको इच्छा करनी पड़े।

इन्सा को चाहिये कि न सोचे बुरी कभी।
वह बात होके रहती है लो भाई जो ख्याल में॥

डेरे धाम मन्दिर और मसजिद

(लेखक—परमदयाल फ़क़ीर साहब)

श्री बाबूलाल जी सक्सैना जाडौल जिला बुलन्दशहर जो हजूर दातादयाल के सच्चे सेवकों में से हैं अबकी बार शिव रात्रि जन्म उत्सव पर दयाल धाम अलीगढ़ में सतसंग के विचार से पधारे। आप सच्चे गुरु भक्त हैं। आपके दर्शन से अत्यन्त प्रसन्नता हुई। दातादयाल इनके ग्राम में एक स्थान है जहाँ किसी समय कुछ संत और साधू तपस्या करते हैं वहाँ पधारे और उस

स्थान का नाम अगमधाम रक्खा। वहाँ पर मुंशी बाबूलाल जी ने परिश्रम करके अपनी निर्धनता की अवस्था में कुछ कमरे बनवाये और अब वहाँ एक स्कूल है। चूँकि इस पाठशाला के नाम पूर्व शिव लगाया गया है जन साधारण धार्मिक और पांथिक पक्षपात के अन्तरगत उस स्थान को मुन्शी बाबूलाल जी की इच्छानुसार उन्नति करने में बाधा डालते रहते हैं।

मुन्शी बाबूलाल जी ने मनमगन अप्रेल सन् १९३६ का मुझको भेजा है जिसमें इस अगमधाम का इतिहास संक्षेप में वर्णन किया गया है मैंने उसका अध्ययन किया। वह लेख पूज्य नन्द किशोर मलहोत्रा की लेखनी से है। मैंने मुन्शी बाबूलाल को बचन दिया है कि यदि मौज को स्वीकार हुआ तो मैं वहाँ दर्शनों के लिये आऊँगा। किन्तु मैं जन साधारण के समक्ष कुछ प्रस्तुत करना चाहता हूँ। वह यह है कि मसजिद, मन्दिर, डेरे और धाम तथा गुरुद्वारा क्यों बनाये जाते हैं ? मेरा उत्तर निज अनुभव के आधार पर है।

१—मानव प्रकृति वाह्य मुखी है और जो प्राणी बाहर मुखी हैं उनको जब तक बाहर मुख्यता का कार्य न दिया जाय उनके मन लगाने की सामिग्री नहीं मिलती।

२—प्रत्येक कार्य के लिए कोई न कोई स्थान तथा केन्द्र अनिवार्य है। शिक्षा के प्राप्त करने के लिए पाठशालाओं की आवश्यकता है। व्यवसाय के लिए कार्यालय व अन्य व्यवसाय केन्द्रों की आवश्यकता है। और इन केन्द्रों से जनसाधारण को जिस प्रकार का केन्द्र होता है। उसी प्रकार का लाभ होता है।

पंजाब भाखड़ा नागल डाम एक विशाल बनाया जा रहा है जहां से सम्पूर्ण पंजाव को पानी और बिजली मिलेगी। इसी प्रकार यह मंदिर, मसजिद, गुरुद्वारे, डेरे और धामों का भी यही मन्तव्य होता है कि इन स्थानों से शुद्ध, पवित्र विचार दूसरों के

दिये जाँय। इससे अधिक इनकी मान्यता नहीं है।

बड़े बड़े मठ, विभिन्न धर्मों और पंथों के विद्यमान हैं। यदि प्राचीनकाल की ओर दृष्टि डाली जाय तो जो विशाल मंदिर बनाये गये थे और उनमें मूर्तियाँ स्थापित की गईं थीं वह काल के परिवर्तन ने नष्ट भ्रष्ट कर दिये। किसी समय वह बड़ी मनोरंजक थीं अब समय बदल रहा है और ऐसा समय आता हुआ प्रतीत हो रहा है कि जब यह मन्दिर, मसजिद, डेरे, धाम आदि सब समाप्त हो जावेंगे। काल का चक्र चलता रहता है। इस समय नवीन युग है। नवीन शिक्षा होगी। और वह नवीन शिक्षा है मानवता, मनुष्यता। प्राणी वाह्य धर्मों और पंथों से उकता रहा है। राधास्वामी मत तथा संत मत इस नवीन शिक्षा प्रसार का उत्तरदाई है।

मुन्शी बाबूलाल जी की दृष्टि को इसी मन मगन जो उन्होंने मुझे भेजा है उसकी ओर आकर्षित करता हूँ। वहां दाता-दयाल ने एक स्थान पर स्पष्ट लिखा है कि गुरू मनुष्य की अपनी ज्ञात है तथा आपा है। और अपने आपे का ज्ञान गुरू ज्ञान कहलाता है। परन्तु मुंशी साहब इतनी आयु के पश्चात् भी यही समझते हैं कि गुरू महर्षि जी हैं। महर्षि जी की पवित्र पुनीत विभूति ने समस्त जीवन नाना प्रकार से यह निश्चय कराने का प्रयत्न किया कि वास्तविकता क्या है और जो उनके साथ संबंध रखते थे उनको अपनी बात हृदयांकित कराने के लिए कार्य दिया था। मुझे कार्य दे गये और उस कार्य से मुझे जो कुछ वर्णन करते थे निश्चय होगया कि वास्तविकता क्या है। मालिक है। वह परमतत्व क्या है। क्योंकि मैं इसी खोज में मौज आधीन उनके चरण कमलों में गया था और उस अनुभव के आधार पर नितान्त निस्वार्थ निष्काम होकर मैं सतसंग कराता हूँ। इस कार्य से मुझको लाभ हुआ। मैं रहस्य को समझ गया

और इस रहस्य को स्पष्ट शब्दों में कहता हूँ ऐ प्राणी ! वह मालिक ईश्वर, परमेश्वर जिसके लिए इतने धर्म और पंथ आदि संसार में बनाये गये थे वह वास्तव में जैसा कि दातादयाल ने मन मगन में स्पष्ट रूप से लिखा है कि वह हालते बेहालती है और उसको अनुभव करने के लिए साधन सुरत शब्द योग परन्तु किसी पूर्ण पुरुष के सतसंग का होना अनिवार्य है। मुंशी बाबूलाल जी का वह समय और था अब बदलना अनिवार्य है। यदि नहीं बदलेगा तो मैं अपराधी हूँ। संसार दिखावटी है इसीलिए ऐ मुन्शी बाबूलाल जी ! यह कार्य तुम्हें किसी विशेष मन्तव्य से दिया गया था इसके क्रम में तुम्हारा मन इस ओर लगा रहा और समय आने पर तुमको मेरे पास आना पड़ा जिससे कि तुम्हारा कार्य बन जाय। यदि यह विचार न दिया गया होता तो इस ओर तुम्हारी लगन न रहती और न तुम अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते। और यही कारण अगम धाम व दयालधाम की नीवों का था। अब रहा साँसारिक व्यवहार। स्कूल का यदि गाँव वाले नाम परिवर्तन करना चाहते हैं तो बदल दें। गुरू का कोई नाम नहीं, रूप नहीं। वह सर्वाधार सर्वव्यापक है और प्रत्येक प्राणी का अपना आपा है। इसी अगमधाम को मानवता का केन्द्र बनाओ यह बनकर रहेगा। मुझे पूर्ण विश्वास है। मेरे विचार उच्चकोटी के हैं जन साधारण बिना सतसंग के समझ नहीं सकते। इसलिए सतसंग अनिवार्य है।

यदि मौज हुई तो उपस्थित हूँगा और आपके यहां के सज्जनों को वास्तविक रहस्य का सत्य ज्ञान दूँगा यद्यपि उनकी इच्छा और आवश्यकता हो। अधिकार और संसकार अति आवश्यक होते हैं।

यदि जन साधारण संतों की शिक्षा को समझ जाते तो यह संसार सुख और शाँति का घर हो जाता।

संतमत-गुरुद्वारे, डेरे और धामों का पक्षपाती नहीं है वरन् यह सच्ची शांती निर्भ्रान्ती दिलाता है। साथ ही इन मन्दिरों, मस-जिदों, धामों और गुरुद्वारों से संस्कार मिलता है। इसमें केवल किसी पूर्ण पुरुष का आदेश मानना है।

गुरु जो कहैं सो हितकर मान। गुरू जो कहैं सो चित धर ध्यान॥

किन्तु बात को समझना सुगम नहीं समय लगता है। आपका समय आ गया। आपने आदेश माना। अब अपने रूप में फिर रहने का प्रयत्न करो। दातादयाल तुम्हारा निज स्वरूप है। यदि नहीं ठहर सकते तो उस आपे को शब्द, प्रकाश, ज्ञान तथा गुरू स्वरूप में मानकर चले चलो। यदि मैं सचमुच फ़क़ीर हूँ और संत हूँ तो कोई संदेह नहीं कि तुम्हारा प्रत्येक प्रकार का अज्ञान दूर होगा और तुम निज स्वरूप में लय हो जाओगे। और इसी मन्तव्य से यह कार्य तुमको मेरी समझ में दाता ने दिया होगा।

ग़ज़ल पीरेमुग़ाँ साहब

दिल ही था दिलदार और यह दिल ही दिलवर बन गया।
रास्ता तै हो गया यह दिल ही रहबर बन गया॥
मख़मसे में पड़के नाहक़ की परेशानी हुई।
दिल के अन्दर जब घुसे यह दिलावर बन गया॥
मुफ़लिसी थी दिल की मोहताजी से उसको काम था।
आई इस्तग़ना जो दिल में दिल तवन्गर बन गया॥
बंदगी शरमिंदगी थी बंदगी थी गंदगी।
आ गई ख़ुरसंदगी दिल सबसे बरतर बन गया॥
वाहवाऊ पीरेमुग़ां दिल की मिली तुझसे शराब।
दिल ही मेरा आबे हैवाँ आबे कौसर बन गया॥

कर्मभोग अथवा मौज

(ले०—परमदयाल फ़क़ीर साहब)

जिन्दगी मैंने उस परम तत्व की तलाश में बरुफ़ की।
इस रुफ़त में दोस्तो यह हस्ती पुरलुत्फ़ रही॥
बहुत कुछ सुनता था मैं दिल में यह ख्वाहिश रही।
देखूँ मैं उसको जिसकी बाबत मज़हबो पंथ में चर्चा रही॥
अपने कर्म के भोग वश या मौज मालिक के आधीन।
लिख रहा हूँ निज अनुभव अपना जो मेरी अपनी है बीती॥

आज समस्त रात्रि उस परमतत्व दातादयाल के प्रेम, भक्ति योग साधन आदि में व्यतीत करने के पश्चात् चैतन्य हुआ। विचार आया कि मेरा अनुभव कहता है जैसा कि मैं वर्णन करता रहता हूँ वह मालिक परमतत्व एक अनन्त अपार शक्ति है। कई उसको अपना आपा तथा व्यक्तित्व कहते हैं। कई उसको बे अन्त कहते हैं। वास्तव में वह मौन रहने का विषय है। यद्यपि मन बुद्धि, विवेक के अन्तरगत मैं और तू का शब्द गढ़ने के लिए विवशता है।

उसके साथ सन्तों ने गुरू महिमा को गाया है और राधास्वामी मत, नानक और कबीर पंथ के महान पुरुषों ने सतगुरु शब्द मुख्य रखकर सतगुरु को विशेषता दी है। हजूर शाविलेशाह सदैव वर्णन करते थे कि सतगुरु एक शक्ति है वह जीवों की हर प्रकार से सँभाल करती है। जंगलों, पहाड़ों, बियावानों में दिन रात वह साथ रहता है।

मेरे सम्बन्ध में साधारणतः अनेक सज्जन कहते हैं कि मैं उनके साथ रहता हूँ और उनकी संभाल करता हूँ। दर्शन देता हूँ। औषधियाँ बतलाता हूँ। प्रकाश के रूप में अनेक मुझे दूर देशों में रहते हुए देखते हैं। मेरी अनभिज्ञता इस सम्बन्ध में एक

रहस्य है जिसको जन साधारण विश्वास नहीं करते हैं। चूँकि मैं सच्चा हूँ इसलिये विचार हुआ कि संतों ने यह गुप्त क्यों रक्खा। और मालिक को तथा परमतत्व को ही मुख्य क्यों नहीं रक्खा। यह गुरू या सतगुरू का शब्द क्यों गढ़ा गया। क्या उनको अपने मान, प्रतिष्ठा की लालसा थी ? अथवा कोई अन्य उद्देश्य था। यह प्रश्न उत्पन्न हुआ है।

इसका उत्तर यह है कि मालिक तथा परमतत्व का विचार किसने दिया ? सोचो ! या तो प्राणी ने संसार को देखा, बुद्धि उत्पन्न हुई और वह उस संसार के बनाने वाले का विचार करने लगा। अथवा उसको दूसरे व्यक्तियों ने उस मालिक का बिचार दिया। अतः उसको धार्मिक तथा पांथिक पुस्तकों से विचार मिला अन्यथा प्राणी के अन्तर शान्ति, ठहराव की लालसा उत्पन्न हुई।

चूँकि गुरू नाम ज्ञान, विवेक और अनुभव का है इस-लिये उस परमतत्व तक पहुँचने, उसको जानने, उस को मिलने के लिये सच्चे ज्ञान सत्य बिचार और यथार्थ बुद्धि की आवश्यकता है अथवा शान्ती प्राप्त करने के लिये सच्ची विधि, सत्य उपाय और सच्चे हित और मत की आवश्यकता है। यही कारण है कि गुरुमत की प्रधानता है। और क्या पता इसी बिचार से गुरू की मुख्यता है जो अपने हित और मत से इस न्यूनता को पूर्ण कराता है।

गुरु गोविंद दोनों खड़े किसके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु आपको जिन गोविंद दियो मिलाय॥

किन्तु जन साधारण ने गुरुमत को नहीं समझा है। गुरु मत का मुख्य भाव किसी ऐसे पूर्ण पुरुष जो स्वयं उस परमतत्व के रूप को पहचानता है अथवा स्वयं उसका रूप हो चुका है का सतसंग ही मुख्य और सच्ची गुरु भक्ति है। और इसी रहस्य को बताने के लिये राधास्वामी दयाल प्रगट हुये थे। किन्तु

जन साधारण नितान्त निचली श्रेणियों के जीव होते हैं वह समझ नहीं सकते जब तक उनका मन थिर न हो। और उनकी बुद्धि और विवेक न जागे। क्या पता इसीलिये बात को गुप्त रक्खा गया हो और केवल अधिकारियों को बताया जाता हो।

परन्तु इसके कारण जीवों का अकाज भी हो रहा है। मन के भीतर चोर रहता है। संशय रहता है और वह चोर व संशय प्राणी को इस मन के चक्कर से निकलने नहीं देता है। अन्ध विश्वास के कारण लोग पक्षपाती और संकीर्ण हृदय हो जाते हैं। जो कि एक कोढ़ का रोग है। इसलिये मैंने जिससे सन्तों की वास्तविक शिक्षा समाप्त न हो जाय स्पष्ट शब्दों में सचाई का डंका बजाया है कि ऐ मानव! किसी पूर्ण पुरुष के सतसंग की शरण ले। यही बात राधास्वामी दयाल जिनको मैं सत्यता का स्वरूप, सत्त पुरुष, पूरणधनी अन्ध विश्वास से नहीं वरन् वास्तविकता के विचार से मानता हूँ, ने कही है:—पूरा सतगुरु खोजरी तेरे भले की कहूँ।

वरन् यहाँ तक कह गये कि यदि एक गुरू जिससे तुम्हारा कार्य नहीं बना अर्थात् साक्षातकार नहीं हुआ उसके चोला छोड़ने के पश्चात् दूसरे के यहाँ जाओ और उसका सतसंग करो। साथ ही वह आदेश दे गये कि जब तक संतगुरु प्रगट हों सबको उनकी शरण में जाना चाहिये। शरण में जाने का यह अभिप्राय नहीं कि तुम उनके दास बनो वरन् उनका सतसंग सुनो और जो वह आज्ञा दें उसका पालन करो। इसलिये इस युग में:—

प्रगटा सतगुरु रूप धर यह दयाल फ़क़ीर।
अज्ञानी निबल अबल जीव हैं और हैं निपट अधीर॥
उनको देऊँ निवेद मैं सुनो हमारी बात।
काल माया के चक्कर में हो रहा है उतपात॥

मेरे सतसंग से मिलेगा तुमको भेद।
भेद को पाकर भाइयो समझोगे जो है अभेद ॥

अभी एक मनुष्य गांव का जिसको मैं नहीं जानता किन्तु वह जानता है आया और मेरी बड़ी प्रशंसा करने लगा। उसने कहा कि उसके घर से एक स्त्री २० दिन हुये गुप्त हो गई थी। वह कहता है कि उसने मुझको स्मरण किया और मैंने उसके अन्तर प्रगट होकर कहा कि स्त्री आजायगी। धीरज धरो और वह आ गई। वह प्रसाद लाया था मैं लेता नहीं था अन्त में उसको वितरण कर दिया गया परन्तु मैं इन सम्पूर्ण घटनाओं से अनभिज्ञ हूँ।

साथ ही मेरी इस स्पष्टता से अथवा संतों की उच्च और सत्य शिक्षा से जो निचली श्रेणियों के जीव हैं उनके विश्वास में कमी आती रहती है पिछले युग में संतों ने संकेत से कार्य लिया और इस विश्वास की स्थिति रखने के लिए और साथ ही इस मन के चक्र से निकालने के लिये रोचक और भयानक बातें सत्संगों में वर्णन कीं जिससे जीवों को अपने विश्वास आधीन सहारा भी मिलता रहे और साथ ही अधिकारियों को वास्तविकता और सार भेद का भी ज्ञान होता रहे। चूँकि संतों की शिक्षा जिस अभिप्राय से दी गई थी वह समाप्त हो गई। पहले यदि जीव अपने विश्वास से मंदिर, मसजिद, गुरद्वारे गिरजाओं अथवा देवी देवताओं या अन्य बातों में फँसे हुए थे तो अब जो उनसे निकले वह गद्दियों, डेरों, धामों के गड्ढों में गिरे और उनके वास्तविक रूप को न जाना। इसलिए संसार को अधिकार है कि मुझे बुरा कहे या भला कहे। मुझे मौज आधीन कर्तव्य पालन करना है वह है।

तेरा रूप है अद्भुत अचरज तेरी उत्तम देही।
जग कल्याण जगत में आया परमदयाल सनेही ॥

मैं कहता हूँ ऐ मानव ! सच्ची समझ, सच्चा विवेक, सच्चा ज्ञान प्राप्त कर और उसी का नाम सतगुरू है। वह परमतत्व, सर्वाधार, निज स्वरूप प्रत्येक समय तेरा है और अंग संग है वरन् तू स्वयं उसका अंश है। तुझको जो कुछ मिलेगा वह तेरे ही विचार, भाव, विश्वास, श्रद्धा आस अथवा कर्म का फल मिलेगा तू रहस्य को समझ और व्यर्थ दासत्व की कड़ियाँ अपने गले में डालकर जगत में दासत्व का खेल मत देखा। यदि किसी पूर्ण पुरुष का सतसंग मिल जाय तो उससे लाभ उठा।

लाभ उठाना रहस्य को समझ कर अपने मन, कर्म, बचन पर अधिकार पाना है। फिर तेरा लोक और परलोक दोनों सुधर जावेंगे। इसलिए अपने कर्म भोग वश मौज आधीन पुकार कर रहा हूँ कि ऐ मानव ! तू मनुष्य बन सत्यता, वास्तविकता और यथार्थता का अनुयायी बन ! संसार में जी और जीने के नियम को अपना और दूसरों को जीने दे।

मुझे यह आशा है कि वर्तमान संतमत (राधास्वामी, कबीर, नानक व महर्षियों) के अनुयाई, आचार्य निज स्वार्थ और निज मान, प्रतिष्ठा, धन, सम्पत्ति को त्यागकर इस समय जब कि भारत को एकता और उन्नति की अति आवश्यकता है मानव क्षेत्र में आयेंगे और सत्यता का डंका बजावेंगे।

यह ठीक है कि जन साधारण इस उच्च शिक्षा को नहीं समझ सकते हैं किन्तु समझाना वर्तमान और भविष्य में आने वाले सत पुरुषों का कार्य है। परन्तु यह तो फँस गये मान, बड़ाई धन सम्पत्ति के चक्र में। बड़े बड़े महात्माओं को धनाढ्य और राज्य अधिकारियों की चाटुकारी करते देखा गया है। इसलिए कि उनसे उनके डेरे, धाम गुरुद्वारे, मंदिरों और मसजिदों के लिए धन एकत्रित होता है।

यह डेरे, धाम, मठ आदि अनिवार्य हैं परन्तु यह जनता

की भलाई के लिये हैं न कि महात्माओं की मोटरों, और निज गृह निर्माण अथवा निज सम्पत्ति के लिये। देने वाले तर जाते हैं। उनका भाव, विश्वास और श्रद्धा उनको तार देती है किन्तु लेने वाले डूब जाते हैं। इसलिये मुख्य मंडल मनुष्यता का है। जनता का धन दुखी, अशान्त, भ्रान्तमय जीवों के काम आना चाहिये।

अहा! वह परम पुनीत पवित्र व्यक्तित्व जिसकी यथार्थ और वास्तविक शिक्षा का उत्तरदाई हूँ वर्णन कर गये:—

शिष्य को ऐसा चाहिये गुरु को सब कुछ देय।
किन्तु
गुरु को ऐसा चाहिये शिष्य का कछू न लेय॥

मैंने जीवन इस संत मत की शिक्षा को समझने में व्यतीत किया। जो समझा वर्णन करता रहता हूँ। प्रत्येक सच्चे महात्मा का अधिकार है कि मेरे लेखों और प्रवचनों का खंडन करे यदि उसकी अपनी अन्तरी आत्मा मेरे साथ सहमत न हो। पुस्तकों और वाणियों के उदाहरण व्यर्थ हैं। प्रत्येक वाणी और वचन समयानुकूल जनता के संस्कार और अधिकार के अनुकूल किसी विशेष मन्तव्य से कही गई वह उस समय के लिये ठीक थी अब समय बदल गया तुम भी बदलो।

नवीन युग, नवीन प्रकृति, नवीन नियम, नव जीवन। यही बात राधास्वामी दयाल वर्णन कर गये कि "वक्त गुरू बिन काज न सरि है"।

अब रहा निचली श्रेणियों के जीवों के लिये। उनके लिये यह अनिवार्य है कि साधन और सतसंग दोनों रहें परन्तु जिनका सतसंग किया जाता है वह स्वयं पूर्ण होने चाहिये। ऐसे पवित्र, निर्पक्ष, सहानुभूति और संकल्प शक्ति रखने वाले पुरुषों के सतसंग की रसायन तथा प्रभाव उनको ऊँचा ले जावेगी। जिस प्रकार

एक कामिनी को देखकर तथा उसका फोटो देखकर कामी के अन्तर काम उत्पन्न होता है। सूर्य के पास से गर्मी मिलती है इसी प्रकार एक पूर्ण पुरुष के सतसंग और दर्शन से प्राणी के भीतर एक प्रकार का संस्कार उत्पन्न होता है और उसी संस्कार से प्राणी के जीवन में परिवर्तन आता है। मैं इसीलिये सदैव दुखी और अशान्त, जिज्ञासुओं को कह दिया करता हूँ कि मेरा ध्यान करो क्योंकि मैं इस नियम का ज्ञाता हूँ। यदि स्वप्न में संकल्पमय कामिनी तुमको कामातुर बना सकती है तो क्या जाग्रत में किसी पूर्ण पुरुष का ध्यान तुमको लाभ नहीं पहुँचा सकता है? अवश्य पहुँचायेगा। इस काल और माया के चक्र में ही तो समस्त जीवन व्यतीत नहीं करना है। पता नहीं अन्त समय कब आ जावे इसलिए संतमत लोक और परलोक दोनों का उत्तरदायित्व लेता है यद्यपि किसी पूर्ण अनुभवी पुरुष का सतसंग मिल जाय। इसलिए मेरे मत में केवल पूर्ण सतगुरु उसका सतसंग और उसका वचन, अथवा आज्ञा पालन ही मुख्य है। बिना पूर्ण अनुभवी पुरुष के कार्य न बनेगा। इसीलिए मैं कहता हूँ कि समय गुरू को क्यों आवश्यकता है।

वेद नाम है ज्ञान का। यह श्रुति मार्ग है। जो सुना गया हो। त्रिकुटी स्थान पर जिसको ओंकार का स्थान कहते हैं उस स्थान पर मानसिक विचार, भाव, संकल्प एकत्रित होते हैं। उनके एकत्रित होने से मानवीय मस्तिष्क के भीतर शब्द और प्रकाश उत्पन्न होता है। जो महान पुरुष अपने प्रत्येक प्रकार के निज स्वार्थ और पक्षपात से निष्पक्ष हैं और जगत के कल्याण की लालसा रखता है वह जब अपने अन्तर एकाग्र होगा तो उसके इस त्रिकुटी स्थान पर इस भू मण्डल अथवा ऊँचे लोकों को जो सूक्ष्म प्रकृति अथवा संकल्प अथवा सांसारिक जीवों की जो इच्छायें हैं वह उसके मस्तिष्क पर प्रभावित होती हैं। चूँकि

उसका अपना कोई संकल्प, इच्छा तथा वासना नहीं इसलिए वह उन भू मण्डल के सूक्ष्म प्रकृति के भावों के एकत्रित हो जाने के कारण जो धुनि अथवा शब्द सुनता है उसके प्रभावों से जो वह कहता है वह वेद और ज्ञान है और प्राचीन काल में वही धुनि ऋषियों ने मन्त्रों द्वारा व्यक्त की और उस वाणी का साधन करने से संसार का कल्याण होता है। इसलिए प्राचीन युग में उस समय की प्रकृति के अनुसार निष्कपट, निष्छल और जगत हितकारी ऋषियों ने अपने अन्तर में जो उस समय के भूमण्डल के प्रभाव थे जो वाणी व बचन उन्होंने उस समय कही वह उस समय के लिए उचित थे। और जन साधारण ने उनकी आज्ञा पालन से लाभ उठाया। इस समय के भूमण्डल के विचारों और भावनाओं का जो प्रभाव है वह भूतकाल से भिन्न है इसलिए इस समय ऐसे महान पुरुष की आवश्यकता है जो वर्तमान प्रकृति के अनुसार जो संस्कार उसको अपने अन्तर उस धुनि जो इस समय सांसारिक भावनाओं के अन्तर उत्पन्न हुई उसके प्रभावों से जो वह कहता है वही संसार का कल्याणकारी मार्ग हो सकता है। मैंने इसलिए निष्काम, निष्कपट और सहानुभूति का हृदय रखकर जो अपने अन्तर साधन किया उसकी धुान का प्रभाव यह है कि "मनुष्य बनो !" इसलिए ऐ हिन्दू, मुसलमान तथा अन्य धर्म पंथ वालो ! अपने कर्म भोग वश पुकार किए जा रहा हूँ मानो या न मानो यह तुम्हारी इच्छा है। त्रिकुटी के स्थान पर सम्पूर्ण जगत ज्ञान से अथवा अज्ञान साधन करता है। जन साधारण का साधन उनकी अपनी इच्छाओं तथा वासनाओं के अनुसार होता है जिस प्रकार उस पुरुष का उदाहरण जो इस लेख में आया है कि उसकी स्त्री घर से चली गई तो उसने अपनी वासना के अन्तरगत मेरा ध्यान किया और उसको अपने अन्तर में उत्तर मिला कि स्त्री आ जावेगी और वह आ गई। यह उसकी अपनी

वासना के ही तीन रूप थे। एक वह स्वयं, दूसरी उसकी इच्छा तथा भावना और एक विचार से मेरा सहारा जो वास्तव में उसका अपना ही सहारा था उसके कारण सफलता हुई यह त्रिकुटी का एक रूप है। किन्तु जो प्राणी संसार के कल्याण हेतु बिचार करके साधन करते हैं उनको उसी प्रकार अनुभव होता है कि ऐसा करना चाहिए तथा ऐसा हो जावेगा। यह कार्य केवल सतपुरुषों का है सत्तपुरुष कभी भी किसी जात, पाँत अथवा पक्षपात में नहीं रहते उनका विचार प्राणीमात्र के कल्याण के लिए होता है।

दातादयाल जी का पत्र प्रिय राजमुनी के नाम

तुम्हारा पत्र नहीं आया। सोच छोड़। कोई साथ न जावेगा। मूर्ख नहीं मानती झूँठों का साथ देना चाहती है। जो तेरा है वह तेरे घट में तेरे साथ है। तू अंधी है उसकी ओर दृष्टि नहीं करती। अन्तर में ढूँढ़। उससे लौ लगा। वही तेरा सच्चा पति, पिता, माता और नाथ है। वह कभी तुझे न बिसरावेगा। तनिक ध्यान कर वह दिखलाई देगा। चित्त लगाने की बात है। चित्त लगाकर देख। शरीर मरेगा इसका प्यार कैसा। शरीर रोगी होता है। वह रोगी नहीं होता। प्रातः मध्यान और सोने से पूर्व की प्रार्थनायें निम्नलिखित हैं चित लगाकर भजन किया कर तेरे सम्पूर्ण क्लेश दूर होंगे।

प्रार्थना प्रातःकाल

तुम्हारा एक सहारा नाथ ॥टेक॥
मैं अजान चिन्ता बस व्याकुल मन में भरा हंकारा।
तीन ताप की अग्नि जलावे कौन करे निस्तारा॥ नाथ मेरे
लोभ मोह ने मुझे फँसाया सूझै वार न पारा।
गुरु उपदेश न चित्त समावे हार हार बहु हारा॥ नाथ मेरे

धीरज द मेरी बाँह पकड़ कर भव से करौ किनारा।
राधास्वामी सतगुरु दाता मैं हूँ दास तुम्हारा ॥ नाथ मेरे

प्रार्थना मध्याह्न काल

आश लगी तुम्हरे दर्श की दर्श दिखा दो नाथ ॥टेक॥
मात पिता भाई सम्बन्धी इनके झूँटे प्रेम में बँधी।
मैं तो सब बिधि भई हूँ अन्धी साँची डर दिखादो नाथ ॥ आस०
आओ २ चित में समाओ, सांवरी मूरति हिये बस जाओ।
बिगड़ी मेरी बना भी जाओ प्रीति की रीति सिखादो नाथ ॥आस०
तुम हो सांचे सखा सँघाती, तुम्हें रिझाऊँ दिन और राती।
राधास्वामी मेंटो सब उत्पाती घट का मरम लखादो नाथ ॥आस०

सोने से पूर्व की प्रार्थना

मेरा संकट काटो नाथ ॥टेक॥
दीन दुखित और मलीन चित, कोई संग न साथ।
कैसे दुख जीवन को बिताऊँ, धरौ सिर पर हाथ। मेरा संकट
तुम हो मेरे सांचे रक्षक, मैं अजान अनाथ।
भूल चूक को क्षमा करो प्रभु चरन झुकाऊँ माथ ॥ मेरा संकट
साँची भक्ति दो दया मय, और प्रेम की दात।
राधास्वामी की कृपा से छूटे सब उत्पात ॥ मेरा संकट

मालिक पर भरोसा रक्खो। उसकी मौज पर प्रसन्न रहो।

जो दूसरों को हानि पहुँचाता है उसे स्वयं संसार में हानि पहुँचती है। मनुष्य को चाहिये इससे बचकर रहे।

प्रेम प्रीति से बुरे प्राणी अच्छे बनाये जा सकते हैं और घृणा द्वेष करने से अच्छे भी बुरे बन जाते हैं।

संसार में चतुर और मूर्ख, ज्ञानी और अज्ञानी सब मालिक ही के बाल बच्चे हैं। सब पर वह दया करता है। मनुष्य

को भी दयावान बनना चाहिए।

भोले भालों से घृणा न करो फिर तुमसे भी घृणा की जावेगी। सीधे साधे प्रकृति वाले दया और प्रेम के अधिक अधिकारी हैं। प्रसंशा उस व्यक्ति की है जो अपने प्रेम से बुरों को भला बना देता है। जो भलों को घृणा से बुरा बनाता है उसकी कोई प्रसंशा नहीं है अज्ञानी कहता है "अच्छे लोगो भागते हो क्यों हमारे नाम से। कैसे कतरा कर चले हो तुम हमारे काम से॥ उसकी सुनो और प्यार से उसे अच्छे मार्ग पर लाओ यह धर्म है।

यह न कहो कि अमुक मर गया। मृत्यु और जीवन मालिक के हाथ में है कोई किसी को मार सकता है न जिला सकता है यह शक्ति केवल मालिक की है। अच्छे बुरे हो जाते हैं और बुरे अच्छे हो जाते हैं। भलों की भलाई पर प्रसन्नता और बुरों की बुराई पर दया भाव प्रकट करो।

परमदयाल जी महाराज का प्रवचन

(खंडेहा-अलीगढ़)

एक सन्यासी जो के प्रति समाधान।

आज खंडेहा (अलीगढ़ प्रान्त) के सत्संग में ७ सन्यासी महात्मा पधारे। उनमें से एक महात्मा ने जो परमहंस बताये जाते हैं, मेरे भाषण पर कटाक्ष किया। एक मुख्य बात उनके कटाक्ष में यह थी कि केवल सुरत शब्द योग के साधन से ही शान्ति मिल सकती है ठीक नहीं है। मैं निर्पक्ष हूँ। मैं अपने अनुभव के आधार पर कहता हूँ कि सुरत शब्द योग के बिना न तो पूर्ण शान्ति मिल सकती है और न जगत का कल्याण हो सकता है। मेरा यह दावा निज अनुभव के आधार पर है। मेरे अनुभव में शान्ति उसे मिल सकती है जिसमें ईर्ष्या, द्वेष, घृणा आदि न हों। द्वेष, घृणा आदि का मूल कारण पक्षपात है। किसी

बात का पक्ष लेने से दूसरे उस पर आरूढ़ हो जाने से ईर्ष्या द्वेष, घृणा आदि उत्पन्न होता है। कोई कहता है कि केवल जीव, ईश्वर और प्रकृति है। कोई कहता है कि अद्वैत पद सच है कोई कहता है कि द्वैत पद, सत्य है। कोई कहता है कि अमुक गुरू सच्चा है। कोई कहता है कि इस्लाम सच्चा है तथा कोई हजरत मुहम्मद व कोई राम व कोई कृष्ण को सच्च बताता है। जब तक संसार में किसी न किसी प्रकार का पक्षपात है हममें दूसरों के साथ द्वेष, ईर्ष्या व घृणा का होना अनिवार्य है। चाहे उस द्वेष से लड़ाई न हो किन्तु वह द्वैत भाव उत्पन्न करता रहेगा। वेदान्ती को वेदान्त का पक्ष है और राधास्वामी मत वालों को अपने अज्ञान से अपने मत का पक्ष है।

किसी को मन्त्री पने का पक्ष है तो किसी को ब्राह्मण पने का है, किसी को जाति का पक्ष है तो किसी को बाप, बेटा, पति और स्त्री होने का पक्ष है। जब तक पक्ष विद्यमान है चाहे वह घरेलू रूप से है चाहे राष्ट्रीय रूप से है अथवा राजनीतिक है ये ईर्ष्या द्वेष घृणा आदि का भाव मिट नहीं सकता। द्वैत-भाव बना रहेगा।

सुरत शब्द योग से यदि गुरू ने पूर्णता प्राप्त कर ली है तब तो ठीक है अन्यथा सुरत शब्द योग स्वयं एक पक्ष हो जायगा। किसी मनुष्य को यदि पूर्ण गुरू मिला है साथ ही उसने सुरत शब्द योग का साधन किया है तो वह मनुष्य निर्पक्ष हो जाता है। शब्द योग से मुझे क्या मिला? मैंने जब अभ्यास किया। मुझे पापी होने का पक्ष था। कभी समय था जब मैं अपने को भक्त समझता था। कभी शिष्य होने का पक्ष था, कभी साधु होने का, कभी आनन्द अवस्था का, कभी सन्त होने का, कभी परमसंत होने का पक्ष हुआ। शब्द योग के अभ्यास ने और सत्संगियों के अनुभव ने मुझे यह अनुभव कराया कि मैं

कौन हूँ। मेरा अस्तित्व एक परमतत्व आधार है जिसके क्षोभ में आने से प्रकाश और शब्द प्रगट होता है। उसी से निकला और उसी में लय हो जायगा। जब से मैंने यह समझा कि मैं एक बुलबुला हूँ, तब से मैं न गुरु का पक्षपाती रहा न राधास्वामी मत का। जिस प्रकार कि मैं उस परमतत्व का अंश हूँ वैसे ही अन्य प्राणी हैं। किसको बड़ा कहूँ किसको छोटा कहूँ। किस का हित करूँ और किस का अनहित करूँ। चूँकि शब्द योग से यह अवस्था हुई कि न ज्ञानी रहा, न संत, न अलख, न अनामी बना और न राधास्वामी हूँ। इस अवस्था का नाम राधास्वामी है। जहां से निकला उसी में समा जाना है। अब मैं मुख से राधास्वामी नहीं कहता। अब मैं क्या होगया। अब मैं एक मनुष्य हो गया। पूर्ण पुरुष का अर्थ है कि जीवन की जितनी समस्यायें हैं सब हल हो जांय या उनका ज्ञान अनुभव हो जाय। ऐसा पूर्ण पुरुष १८ कला वाला होता है। जीवन सतयुग प्रारम्भ होकर कलियुग में समाप्त होता है। कलियुग का समय बुढ़ापे का समय है राम १२ कला सम्पूर्ण थे, कृष्ण १६ कला सम्पूर्ण थे और पूर्ण पुरुष १८ कला सम्पूर्ण होता है। १६ कलाओं की व्याख्या यह है—५ कर्मेन्द्रियां, ५ ज्ञानेन्द्रियां, ४ मन, बुद्धि, चित अहंकार, अहं बुद्धि और आत्मा। जो व्यक्ति इन १६ प्रकार की इन्द्रियों के भावों और कर्मों पर अधिकार रख सकता है वह १६ कला सम्पूर्ण होता है। कृष्ण भगवान ने जहां युद्ध से काम लेना आवश्यक समझा वहां युद्ध से काम लिया, जहां नीति से काम लेना आवश्यक समझा वहां वैसा किया। कलियुग में संत प्रगट हुये। इनमें २ कलायें और बढ़ीं—(१) दया (२) प्रेम, किन्तु वह दया और प्रेम इस सिद्धांत पर था कि मैं कौन हूँ। जिस पुरुष में १८ कला पूर्ण हैं वह युद्ध नहीं करायेगा। क्योंकि यह दया और प्रेम उसमें ज्ञान या अनुभव से आया है कि मनुष्य

क्या है। मेरी समझ में यह आगया है कि प्राणी मात्र उस परम तत्व के एक बुलबुले हैं। सम्पूर्ण जगत उसी से निकला है। जैसे तुम वैसे हम। मुझ में यह दया और प्रेम सुरत शब्द योग से उत्पन्न हुआ। मैं अब किस से शत्रुता करूँ! मेरे लिये कौन हिन्दू, कौन सिक्ख, कौन वेदान्ती, अर्थात् सब समान हैं। अब बुरा भला कहूँ। इसलिये १८ कला सम्पूर्ण होने की हैसियत में कबीर साहब गुरु नानक व राधास्वामी दयाल थे। ३०० वर्ष पूर्व कबीर साहब की बात कोई नहीं समझ सकता था। उस समय इस शिक्षा को गुप्त रक्खा गया। लोगों को केवल पंथ में सम्मिलित किया। अब भी मेरी बात को संसार में बहुत कम लोग समझेंगे। क्योंकि जगत में कोई सांसारिक इच्छाओं में फँसा है कोई धर्म पंथ के जाल में फंसा है। चूँकि मैंने कबीर पंथ, नानक पंथ और राधास्वामी पंथ में यह कमी देखी अतः शब्द योग द्वारा जो मैंने समझा सत्यता को प्रगट करने के लिये पुकार की कि "मनुष्य बनो"। सार बात को समझो।

राधास्वामी मत या संत मत की शिक्षा के अनुसार ३ बातों की आवश्यकता है—(१) पूर्ण पुरुष की आवश्यकता (२) उसका सत्संग (३) उससे प्रेम। जब तक पूर्ण पुरुष नहीं मिलता कोई इस रहस्य को नहीं समझ सकता। जब तक पूर्ण जिज्ञासू न हो, उस पूर्ण पुरुष के सत्संग से पूर्ण लाभ भी नहीं उठ सकता। यदि भारतवर्ष या संसार सुखी रहना चाहता है तो उसको पूर्ण पुरुष के संस्कारों को लेना पड़ेगा अन्यथा घरेलू, राष्ट्रीय तथा अन्तर-राष्ट्रीय द्वेष घृणा आदि नहीं मिटेंगे। इसलिये जब जब धर्म की हानि होती है प्रकृति समय की आवश्यकतानुसार धर्म को स्थापित करने तथा क़ायम रखने को सत पुरुष उत्पन्न करती है। दुराचारियों के नाश के लिये कृष्ण और रावण के नाश को राम प्रगट हुये। अब संत मत की आवश्यकता

है। समाज में तथा धर्म या सम्प्रदाय में त्रुटियां हैं। यदि त्रुटियां नहीं होती तो सत पुरुष में नहीं होतीं।

यह मेरा वक्तव्य उन परमहंस महात्मा के कटाक्ष का समाधान है। प्रत्येक मत के आचार्य मेरी बात को सोचें। राधास्वामी मत वाले सोचें कि सुरत शब्द से क्या निकलता है। इस साधन से मनुष्य निरत या लय अवस्था को प्राप्त होता है अथवा अशब्द गति को प्राप्त हो जाता है। साधन से उत्थान होने पर यह ज्ञान हो जाता है कि मैं कौन हूँ। उस ज्ञान का नाम ही अनुभव है। राधास्वामी दयाल की वाणी है—

सुरत शब्द दोऊ अनुभव रूपा। तू तो पड़ा भरम के कूपा॥

इस कमाई को पूरा करने अथवा इस अवस्था को प्राप्त करने को अधिकार संस्कार की आवश्यकता है। जो पुरुष दया और प्रेम का भंडार है वह वही हो सकता है जो निर्पक्ष है। यदि मैं राधास्वामी होकर राधास्वामी मत वालों से प्रेम करता हूं और दूसरों से द्वेष या घृणा करता हूं तो मैं भी वही हूं जो और हैं। इसलिये राधास्वामी मत के जितने डेरे, धाम और गद्दियों वाले हैं जिनको अपने डेरे आदि का पक्ष है तो इनमें से कोई भी पूर्ण पुरुष नहीं कहा जा सकता है क्योंकि उनमें द्वेष और घृणा है। राधास्वामी मत वालों का आपस में तथा अन्य सम्प्रदायों से, हिन्दुओं का आर्य समाजियों से, सिक्खों का हिन्दुओं से परस्पर द्वेष और घृणा है तो फिर इनमें से कौन पूर्ण पुरुष हो सकता है। अब चाहे कोई मुझे अहंकारी समझे, गालियां दे किन्तु जो सत्यता है उसको बिना कहे नहीं रह सकता। इसलिये मत मतान्तर धर्म व पंथों को छोड़ कर मैंने मानवता का झंडा उठाया है और इंसान बनने के लिये शब्द योग की शिक्षा देता हूँ और सत्संग पर अधिक बल देता हूं। संसार के बुद्धिमान, अनुभवी तथा विवेकी पुरुष इस पर विचार करें।

मैं अब गुरु ऋण से निवृत्त हो रहा हूँ। उन्होंने सन् १९३३ में आज्ञा दी थी कि चोला छोड़ने से पहिले शिक्षा में परिवर्तन कर जाना। समय आयेगा कि धर्म सम्प्रदाय तथा मत मतान्तर समाप्त हो जायेंगे। उनके स्थान पर यदि कोई ठोस वस्तु प्रस्तुत न की जायगी तो संसार पथभ्रष्ट हो जायगा। सब पदार्थ वादी (Materialist) हो जायेंगे और रहस्य से अनभिज्ञ रहेंगे। इसलिये मानवता का झंडा उठाया है और प्राणी मात्र को मानवता के सिद्धान्तों पर चलने के लिये प्रेरित करता हूं मुझे अब डेरे धाम, नाम, सम्पत्ति किसी की आवश्यकता नहीं है। बस यही प्रार्थना है कि दाता ! मुझे अपने चरण कमल में लेले।

अब रहा यह कि मेरी इस शिक्षाको कोई ग्रहण कर सकता है या नहीं, यह कठिन समस्या है। मैं इसे प्रतीत करता हूँ किन्तु स्मरण रहे याद रखिये कि जब किसी नगर या ग्राम में भिन्न २ पार्टी होती हैं और उस पर कोई आपत्ति आती है तो सब इकट्ठे हो जाते हैं। अतः मेरा अनुभव कहता है कि संसार पर आपत्ति अवश्य आयेगी। मेरी बुद्धि मुझे आज्ञा देती है कि मैं इस बात को स्पष्ट करके कह दूँ। किन्तु चुप हो जाता हूँ। हाँ, इतना कहे देता हूँ कि भारत की आपत्ति की शक्ल दूसरी होगी जो भयङ्कर नहीं होगी। इसका प्रमाण यही दे सकता हूँ कि यदि दया और प्रेम का अवतार सचमुच संसार में आता है जैसे कृष्ण संसार का भार उतारने को आये तो युद्ध का होना जरूरी था और यदि संसार में कोई पूर्ण पुरुष है तो प्रेम, दया और ज्ञान के मार्ग को लाये बिना छोड़ नहीं सकता।

यह परम हंस महात्मा का विरोध जहां तक मेरा अनुमान है राधास्वामी दयाल के इस शब्द से उत्पन्न हुआ—

गुरु चेला व्यवहार जगत में झूँठा बरत रहा।

कासे कहूं खोज नहिं काहू, धोखे धार बहा ॥
गुरु तो लोभ प्रतिष्ठा चाहे, शिष स्वारथ संग आन बंधा ।
सच्चा मारग सुरत शब्द का, सो अब गुप्त भया ।
गुरु चेला पाखंडी करता, चौरासी में दोऊ गया ॥
शब्द सरूपी शब्द अभ्यासी, अरु गुरु मिले तो पार हुआ ।
सुरतवन्त अनुरागी सज्जा, ऐसा चेला नाम कहा ॥
गुरु भी दुर्लभ चेला दुर्लभ, कहीं मौज से मेल मिला ।
शब्द सुरत बिन जो गुरु होई, ताको छोड़ो पाप कटा ॥
राधास्वामी यों कह गाई, बूझ बचन तब काज सरा ॥

मैं स्वयं इस राधास्वामी मत की वाणी से राधास्वामी मत के समझने में कठिनाई प्रतीत करता था। मेरा प्रेम केवल दाता दयाल (महर्षि शिव) के स्वरूप से था। अपने जीवन के अनुभव तथा सत्संगियों के अनुभव ने मुझे विश्वास करा दिया कि हर प्रकार का कर्म, योग, भक्ति अथवा अन्य बातें सब मनुष्य अपने मन, अपने भाव और अपने कर्म का परिणाम हैं। जैसा जिस पुरुष का विश्वास होता है उसको वैसा फल मिलता है और उसकी अपनी भावना के अनुसार जैसा वह सोचता या इच्छा करता है वही सामने आता है। अतः कोई भी प्राणी हो जब तक वह अपने आपे से अलग नहीं होता वह त्रिगुणात्मक जगत के घेर से नहीं निकल सकता और न बच सकता है। वह इस संसार की वासनाओं में रहता हुआ चाहे कि सतलोक में रहे कठिन है। अपने ही कर्म, भाव और आशा में चक्र लगाता रहेगा।

मैंने अपने कर्मभोग वश बहुत साहस करके सत्यता और वास्तविकता का जो मुझे जीवन में अनुभव हुआ है, वर्णन किया है। अब जो व्यक्ति जब तक अपने अस्तित्व अर्थात् अपने हैपने,

सतपने या अपने होने के भाव को नहीं मिटाता, तब तक वह इस त्रिगुणात्मक जगत के परे नहीं जा सकता या रचना के क्रम से नहीं निकल सकता। अतएव सुरत शब्द योग द्वारा अपने अस्तित्व का उस परमतत्व में लय हो जाता है जिससे हम निकले हैं अथवा जिससे हमारी सुरत (आत्मा) बनी है या हमारी आदि शक्ति (energy) निकली है। इस रहस्य की अज्ञानता के कारण इस संसार में अनेक प्रकार के मत मतांतर प्रगट हुए। गृहस्थियों का आपस में भिन्न भाव का होना उनके अज्ञान के कारण है जो क्षमा योग्य है मगर मैं देखता हूँ कि साधु, सन्यासी, योगी, उदासी और अवधूत आदि भी जो प्रगट रूप में ऐसे बने हुए हैं उनकी दशा गृहस्थियों से भी अधिक शोचनीय है। इसलिए निज अनुभव के आधार पर कहना चाहता हूँ कि कोई गृहस्थी वाह्य इन त्यागी लोगों के जाल में न फँसे। इन वाह्य त्यागी पुरुषों या भेषधारियों को, जो केवल गृहस्थियों के यहाँ भोजन मांगने जाते हैं, गृहस्थियों के दुखों का ज्ञान नहीं होता इसलिए वे उनके दुखों के दूर करने को अपनी यथार्थ अनुमति नहीं दे सकते।

यह जो कुछ मैंने कहा है और कहता रहता हूँ वह सब मेरे निज अनुभव पर आधारित होता है। अब सत्सङ्ग समाप्त होता है। यदि कोई अनुचित शब्द मुँह से निकल गया हो तो आप लोग क्षमा करें।

संत कृपा

(ले० महर्षि जी महाराज)

साधू और महात्मा, संत और परम संत, बुद्ध और तीर्थंकर, ऋषि और मुनि भी जब किसी को दुखी देखते हैं और

सच्चा आर्त पाते हैं उसको अपनी शरण से कभी वंचित नहीं करते।

बनारस में एक चोर था। उसने किसी के घर में जाकर सेंध तथा कूमल लगाया। पकड़ा गया। किन्तु पकड़ने वालों के हाथ को झटका देकर छूट गया और जान लेकर बगटट भागा। आगे २ वह और पीछे २ पकड़ने वाले। वह गलियों में से होकर निकला। सामने कबीर साहब का घर था जो कबीर चौरा में स्थित था। एक खाट पर कबीर साहब सो रहे थे दूसरी पर उनकी पुत्री सोई हुई थी। यह घबराया हुआ कबीर साहब की खाट पर गिर पड़ा। आपने पूछा "क्या है ?" उत्तर दिया "चोर हूँ बचाइये आपकी शरण हूँ पीछे पकड़ने वाले आरहे हैं।" परम सन्त ने कहा "मेरी पुत्री की खाट पर चुपकी साध कर सो जाय। मैं उनसे निबट लूँगा। उसने ऐसा ही किया। तनिक देर पश्चात् पकड़ने वाले चोर २ करते हुए आये और कबीर साहब के घर में प्रवेश किया। पूछा "चोर कहाँ है ?" यह बोले "चोर कैसा ? यहाँ चोर का क्या काम ! फ़क़ीर के घर चोर क्यों आने लगा। सम्पूर्ण घर देख लो। इस खाट पर मैं हूं और दूसरी खाट पर पुत्र, पुत्री सोये हुये हैं।" बात सत्य थी। उन्होंने इधर उधर देखा और चले गये। वह व्यक्ति जो कबीर साहब की शरण में आया था वह अब चोर नहीं रहा था। पारस से छू जाने पर लोहा कुन्दन बन जाता है किन्तु साधू के छू जाने पर चोर, उचक्का और धूर्त भी साधू हो जाता है और पकड़ने वालों के चले जाने के पश्चात् वह उठा, चरणों में गिरा "पतित पावन ! कृपा सागर ! आपने इस अधम को संकट के समय अपनी पुत्री के साथ सुलाकर बचा लिया। मैं पापी हूँ, चोर हूँ, बुरा हूँ, आपने आज निःसंदेह मृत्यु के हाथ से मुझे छुड़ा लिया है। आप धन्य हो ! आपकी जै हो।" कबीर साहब हँसे ! तू अब चोर नहीं है

तू परम हंस है। मैं अपने हंसों को इसी प्रकार चिताकर जम के फंदे से छुड़ाया करता हूँ। जो कोई शरणागत बनकर मेरे पास आता है मैं उसे कभी शत्रुओं को नहीं देता।" और वह प्राणी उच्च कोटि का साधू और महात्मा बन गया।

सुख देवें दुख को हरें दूर करें अपराध।
कहैं कबीर वह कब मिलें परम सनेही साध॥

जिज्ञासू में श्रद्धा होती है, यथार्थ में इच्छा पूर्ती का उत्कट भान होता है किन्तु आर्त में क्या है? हम इसकी व्याख्या नहीं कर सकते डूबने वाला तिनके का सहारा ढूँढ़ता है। यह बात आर्त में होती हैं। और इसलिए आर्त होकर भी आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने के विचार से मालिक की ओर आकर्षित होना सौभाग्य की बात है।

ग़ज़ल डाक्टर राज साहब इगलासी

१–तस्व्वुर में तुम्हारे, बात पुर इसरार होती है।
यह वह हालत है, जो ना क़ाबिले इजहार होती है॥
२–नज़र के सामने, जब नूर की बौछार होती है।
नज़र होकर नज़र खुद, मतलये अनवार होती है॥
३–मुकाम ऐसा भी है पुर नूर इक राहे हक़ीक़त में।
जहा पर रोशनी, सूरज की भी बेकार होती है॥
४–अजब ही कैफ़ियत होती है, इक मौजे खमोशी में।
न कोई कहता सुनता है, न कुछ गुफ़्तार होती है।
५–पहुंच जाती है जब यह रूह, खिचकर अपने मरकज पर।
तो अपनी ज़ात से मिलकर के, खुद मुख्तार होती है॥
६–नज़र आती है उलझन जब कोई, कारे रिआज़त में।
तो फिर ऐ राज ! सतगुरु की मदद दरकार होती है॥

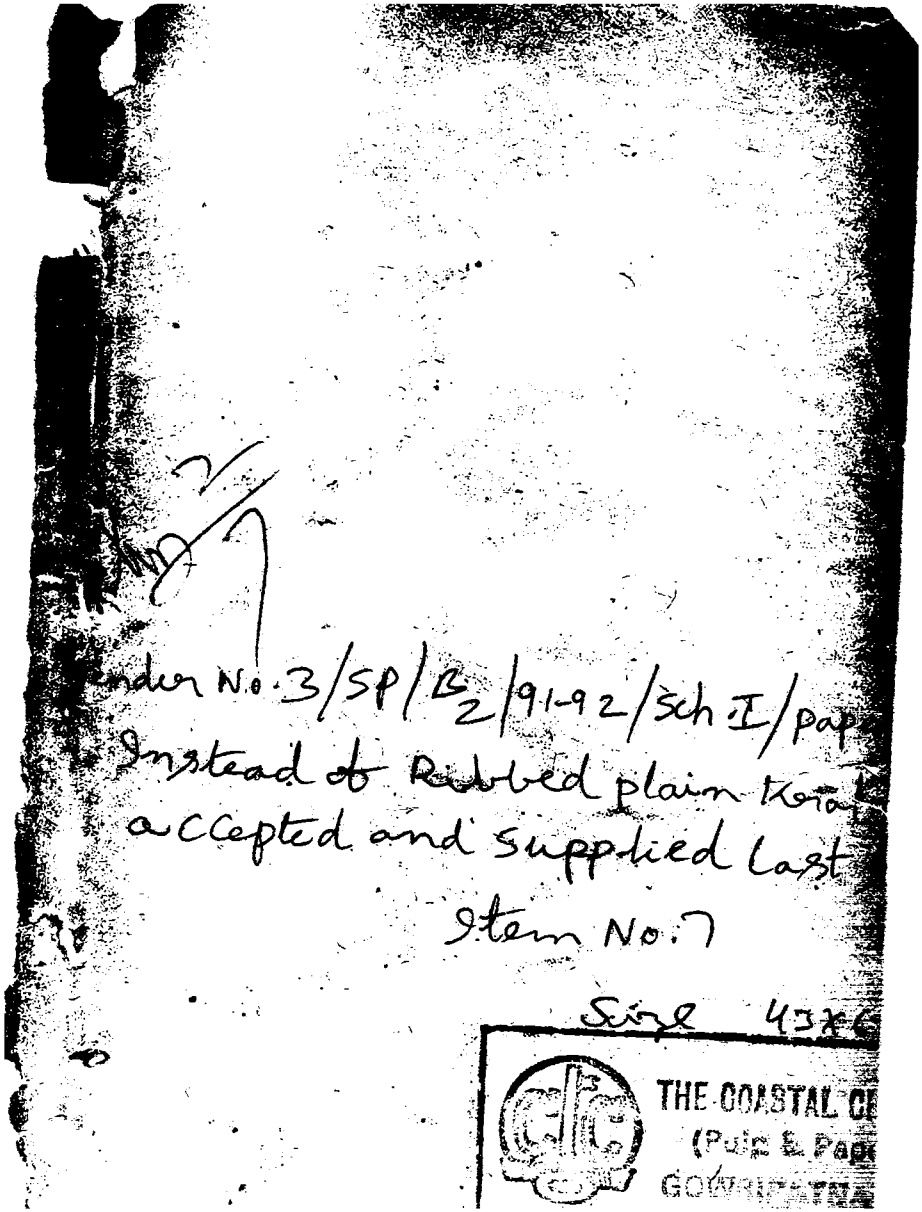

Tender No. 3/SP/B_2/91-92/Sch. I/pap

Instead of Ribbed plain Kora

accepted and supplied last

Item No. 7

Size 43x6

THE COASTAL C
(Pulp & Pap
GOWRIPATNA

[परम दयाल फकीर साहब जी महाराज]